बड़े बाबू का रथ

व्यंगकार : श्री सुरेश कुमार शर्मा

● लेखक की आगामी कृतियों का ब्यौरा

आशुतोष

प्रेम की दुकान पर एक दिन एक नया हम्माल ठेला लेकर आता है। सोलह-सत्रह वर्ष का भोला-भाला युवक। वह एक क्विंटल की बोरी क्या उठा सकेगा यह सोच प्रेम उसे अपने घर पर हल्का-फुल्का काम करने के लिए रख लेता है। गोपाल नाम था इस लड़के का।

गोपाल का मुख भोला-भाला था उस पर प्रेम को दया आई। प्रेम की मां को और प्रेम की पत्नी शारदा को भी। शारदा और गोपाल में एक अव्यक्त प्रेम की धार बह चली। जब गोपाल को मालूम हुआ कि शारदा और प्रेम को ईश्वर ने अपार सम्पदा दी है परन्तु······सन्तान नहीं दी तो वह भी सुबह शाम ईश्वर से यही प्रार्थना करने लगा कि उसके मालिक के घर मे दीपक जगमगा दो।

गोपाल पर राधा भी मन हार गई थी। बहुत सुन्दर और चचल थी राधा। वह गोपाल पर रीझ गई थी।

प्रेम की भाभी चाहती थी कि प्रेम उसकी ननद से विवाह कर ले क्योकि शारदा कभी मा नही बन सकती, लेकिन प्रेम जानता था कि वास्तविकता क्या है? उसने एक डाक्टर से परामर्श लिया था पर डाक्टर ने भी उसे ही असमर्थ घोषित किया था।

कस्बे में एक योगीराज आते हैं वे नगर के अंतिम छोर पर स्थित एक मन्दिर मे डेरा लगाते हैं। उन्होने घोषणा की कि उनके गुरु ने उन्हें आदेश दिया है कि तुम जाकर इस नगर मे रहो। मैं अब बहुत शीघ्र प्राण त्याग कर किसी सत्पुरुष के घर में जन्म लूंगा।

शारदा की सास और गोपाल भी योगीराज के पास शारदा को लाते हैं। प्रेम का विश्वास इन बातों में नही रहा था। योगीराज शारदा को देखकर ठगे रह जाते हैं। योगीराज का प्रेम के घर आना-जाना बढ़ जाता है। एक दिन योगीराज के आशीर्वाद से शारदा गर्भवती होती है।

सुदिन आता है प्रेम की पत्नी को बच्चा होता है। गोपाल नंगे पांव योगीराज के पास जाता है पर तब तक पता लगता है कि योगीराज वहां से करीब 85 किलोमीटर दूर दूसरे शहर में जा चुके हैं।

आस्था और श्रद्धा का पुतला गोपाल उसी दिशा में भूखा-प्यासा चल देता है। इधर प्रेम के घर में हर्ष का वातावरण था कि पता चलता है बहुमूल्य आभूषण का डिब्बा लेकर कोई चला गया है।

पुलिस में गोपाल के नाम रिपोर्ट होती है। गोपाल को ठीक उस समय जबकि वह योगीराज के आश्रम से एक किलोमीटर दूर था इंस्पेक्टर रज़ाक पकड़ लेता है। उसे जीप में बिठाकर वह ले जाने लगता है तो गोपाल उससे प्रार्थना करता है कि मैंने नंगे पैर योगीराज तक आने का सकल्प किया था मुझे उनके दर्शन कर लेने दो। ड्यूटी पर तैनात मुस्लिम इंसपेक्टर दुविधा में पड जाता है?······

विषपायी

शिव एक बिना मां का बच्चा था। उसे उसके मौसी-मौसा ने अपने घर मे शरण दी। एक मिस्त्री की दुकान पर काम करने लगा। मिस्त्री की लड़की मीना से मन ही मन प्रेम करने लगा।

मीना चंचल शोख लडकी थी, उसकी सगाई भी हो चुकी थी परन्तु उसकी प्रेमलीला के चर्चे जब भावी ससुराल मे पहुंचे तो सगाई टूट गई। ले दे कर मीना की छोटी बहन की शादी उसी घर में हो गई।

मीना के माता-पिता मीना से तंग आ गए। उसकी दीदी के पास मीना को भेज दिया जाता है। माता-पिता का विचार था कि मीना की जीजी और जीजा उसके लिए योग्य वर ढूढ लेंगे परन्तु मीना को वे घर की नौकरानी बना कर रख देते हैं। बार-बार जब व्यग्र माता-पिता मीना की शादी के बारे मे बात करते हैं तो जीजाजी यहा भी मीना का दोष बताते है। मीना का पिता अपनी बेटी से इतना दुखी हो जाता है कि वह चाहने लगा लड़की मर जाए तो भली।

शिव एक अन्य स्थान पर अच्छी नौकरी करने लगा। मीना के निराश पिता उसी से मीना की सगाई करने के लिए तैयार हो गये। लेकिन अब शिव मिस्त्री की दुकान पर झाड़ू लगाने वाला नौकर न था। कभी वह मीना की उंगलियां छूने को लालायित था इस समय जब विवाह का प्रस्ताव उसके सामने आया तो सहजता से इसे स्वीकार नही कर सका।

मीना के पिता को बहुत क्षोभ होता है। अपनी लाड़ली का सम्बन्ध दुकान के पुराने नौकर से करने के लिए वह विवश था पर वहा से भी अस्वीकृति मिली तो उसे बहुत क्षोभ हुआ।

मीना इन सब बातों को जान रही थी···उसके मन और मस्तिष्क मे मंथन हो रहा था। आयु के नाजुक दौर में उसकी शरारतें और शोखियां परिवार वालो की दृष्टि में चरित्रहीनता बन गई। स्वार्थी जीजाजी परिवार की कुंठा और निराशा का शोषण करने के लिए मीना को कपड़े और रोटी के बदले में बंधुआ बना लाए और······हां शिव ने भी तो उसे गलत ही समझा।

मीना अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए कुछ करने का निश्चय करके घर से निकली। उसके पिता बदनामी के डर से पुलिस में रिपोर्ट लिखाने या न लिखाने की दुविधा में कुछ न कर सके। मीना को कठिनाई भी हुई, ठोकरें भी मिली, पर वह न किसी चकले मे बैठी न रेल की पटरी पर गई।

मेरी यह रचना ऐसी ही एक साधारण लड़की की कहानी है जो कुछ भूल करने के कारण घरवालो की दृष्टि से गिर गयी।

वह अपने बारे में सही परिप्रेक्ष्य में सोचने लगी इसलिए आत्म-निर्भरता की ओर उन्मुख हुई। समाज में युवती को स्थापित होने में बहुत-सी असफलता और कटुअनुभवों से गुजरना पड़ता है कुछ उसमें बह जाती हैं मीना जैसी लडकियां सम्भल जाती हैं।

कथानक में मौलिकता का दावा नहीं परन्तु प्रस्तुतीकरण में रोचक और पठनीय सामग्री का अभाव भी नही है। अनावश्यक यौनाचार प्रसंगों का स्थान नहीं परन्तु प्रेम और सौंदर्य का रस भी है।

—सुरेश कुमार शर्मा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

वादों की वादी

शीर्षक के भ्रामक होने के लिए क्षमा-याचना। यह कोई प्रेम कथा नहीं है। यहां वादों से आशय राजनीति-शास्त्र के सिद्धान्तों से है।

सभी दलों के पास एक वाद है। किसी दल के पास दो भी हैं। (लेनिनवादी-मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी)। कभी-कभी दल के अधिकांश नेताओ को पता भी नही चलता कि उनके दल मे 'अमुक' वाद जड़ें फैला रहा है—अन्यान्य दल के किसी नेता के वक्तव्य से ही आंखें खुलती हैं। शेखावत से लेकर अडवानी तक किसी को भनक भी नहीं कि भाजपा में नाज़ीवाद या काजीवाद जड़ें जमा चुका है—कोई इंका नेता कहता है तब पता चलता है। फिर भी इन सब अपवादों के चलते यह निश्चित है कि राजनीति का प्राणवाद है। खेती से खाद और राजनीति से वाद निकल जायें तो सब बेकार।

हमारी राष्ट्रीय राजनीति का सबसे भारी-भरकम वाद है—समाजवाद। जब 1947 में साम्राज्यवाद का इंजन अंग्रेज ले गए तो राजनीति की मालगाडी को खींचने के लिए नेहरूजी ने समाजवाद का इंजन लगाया। योजनायें बनीं, चलीं, दौड़ीं और थककर चूर हो गयीं पर समाजवादी समाज की स्थापना न हो सकी। कांग्रेस के बाहर भी कुछ नेताओं ने समाजवाद के आधार पर दलों का गठन, पुनर्गठन, विघटन और विलय किया। डॉक्टर लोहिया से लेकर मनीराम बागड़ी तक कितने ही पहलवान आये और अखाड़े से बाहर होते गए पर समाजवाद को काबू में न कर सके। कारण, शायद यह रहा हो कि नेहरूजी को समाजवाद के 'जेनुइन पार्ट्स' नही मिल सके और विपक्ष एक ड्राइवर अनेक की समस्या सदैव बनी रही, इस प्रकार दोनों ओर परिणाम एक से रहे।

गांधीवाद राजनीति का सबसे मरियल और निरीह वाद है। गांधीवाद पर आधारित कोई प्रमुख राजनीतिक दल नहीं है। फिर भी आवश्यकता पड़ने पर कोई भी दल अपने चुनाव घोषणा-पत्र में गांधीवाद का उपयोग कर लेता है। गांधीजी की तरह गांधीवाद का जिक्र भी दो अक्टूबर के आस-पास या फिर चुनाव की वेला में होता है। गांधीवाद के अधिक प्रचलित न होने का एक प्रमुख कारण यह भी है कि इसमें त्याग और आदर्श कष्टप्रद बातों पर बहुत ज़ोर दिया जाता है।

पूंजीवाद और अधिनायकवाद ऐसे वाद हैं, जिन्हें किसी दल या नेता ने अपने लिए प्रयुक्त नहीं किया। इनका प्रयोग सदैव दूसरों पर वार करने के लिए किया जाता है। पूंजीवाद को समाचार पत्रों में प्रायः मोरारजी देसाई के विरुद्ध उछाला जाता है। कांग्रेस की निन्दा करने के लिए बड़े-बड़े समाचार पत्र (जो स्वयं पूंजीपतियों द्वारा प्रकाशित होते हैं) पूंजीवादी नीतियों को आड़े हाथों लेते हैं। कुछ वाद के लक्षण इतने अणु रूप में होते हैं कि उन्हें हर कोई नहीं देख पाता। जयप्रकाश नारायण के पास एक दूरबीन थी, उन्होंने इन्दिराजी की नीतियों में अधिनायकवाद के जीवाणु देखे और सोने वालों को जगाया—अधिनायकवाद आ रहा है। लोग बिस्तर छोड़ कर भागे और जेल में घुसकर ही दम लिया। वस्तुस्थिति यह है कि लोग अपना घर भर रहे हैं पर पूंजीवाद के विरुद्ध हैं। अधिनायकवाद का अस्तित्व भी राजनीति में है, पर क्या कांग्रेसी और क्या विरोधी सभी अधिनायकवाद को राजनीति के लिए त्याज्य बताते हैं।

हमारे देश की राजनीति में साम्यवाद भी बहुत पुराना वाद है। लेकिन विघटन और पुनर्गठन के कारण साम्यवाद के साथ-साथ भारतीय साम्यवाद, भारतीय मार्क्सवादी साम्यवाद, साम्यवाद लेनिनवादी, मार्क्सवादी आदि वाक्यों में वाद इतने हैं कि पूरी सूची बनाना कठिन है। साम्यवाद को छात्रों और श्रमिकों का समर्थन या रुझान प्राप्त है, इसीलिए भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में साम्यवाद अच्छा 'मार्रजिन' कमा रहा है। देखा जाए तो राष्ट्रवाद के अलावा सभी वाद अच्छा मारजिन

कमा लेते हैं, केवल राष्ट्रवाद ही इतना विकट निकला कि अपने बन्दों को बरसों के लिए घाटे में डुबो गया। एक जमाना था जब राष्ट्रवाद के दम पर जनसंघ उत्तर भारत में खूब पनपा। जलभुन कर कांग्रेसी और कम्युनिस्ट राष्ट्रवाद को हिन्दूवाद कहते रहे पर जनसंघ हिट होता रहा। लेकिन सन् 1980 में जब जनता पार्टी से पृथक् होकर अटलजी ने अपना 'कमल किराना स्टोर' खोला तो मतदाता को राष्ट्रवाद याद ही नहीं आया। गांधीवाद भी मिलाया पर यह चाशनी भी पब्लिक को नहीं खींच सकी। आजकल भाजपा का राष्ट्रवाद स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने मे लगा है।

लेकिन जिस प्रकार एक शहर में सभी कवियों की गिनती नहीं की जा सकती, उसी प्रकार राजनीति को आलोकित करने वाले सभी वादों का यहां उल्लेख नहीं किया जा सकता है। नित नए वाद की स्थापना होती है। वह जमाना और था जब राजनीति में देशप्रेमी स्वतन्त्रता के पुजारी आते थे। स्वतन्त्र भारत में राजनीति में वकील आए, यूनियन लीडर्स आए, पत्रकार आए, यहां तक भी गनीमत थी, पर फिर तिकड़मबाज, धूर्तराज और स्मगलर सम्राट भी आने लगे तो वाद भी नए-नए आने लगे। क्षेत्रवाद, भाषावाद और जातिवाद देखने-सुनने में आए। फिर अवसरवाद और भाई-भतीजावाद राजनीति के नक्कारखाने में अपने नगाड़े बजाने लगे। आज राजनीति शास्त्र का प्रोफेसर भी नहीं बता सकता कि अवसरवाद को भारतीय राजनीति में किसने प्रश्रय दिया। (हम भी नहीं बता सकते) इतना अवश्य है कि राजनीति से राज निकल जाय या नीति निकल जाए अथवा दोनों पर वाद नहीं निकल सकता।

नए प्रधानमंत्री मिस्टर क्लीन के आने से वादों की वादी राजनीति में एक नए वाद की सदा गूंजने लगी है—इसे हम लेटेस्ट वाद कह सकते हैं। यह है 'नतीजावाद'। राजीव गांधी नतीजों मे विश्वास करते हैं, इसलिए प्रधानमंत्री बनते ही उन्होंने दल-बदल विरोधी नियम बनाया। पंजाब और आसाम की समस्याओं का हल निकाला। यह सब इसलिए,

सम्भव हो सका, क्योंकि उनको प्रबन्ध विज्ञान की दीक्षा मिली है। वे देश को उद्योग की तरह मैनेज करना चाहते हैं। पार्टी और सरकार के मामलों में उनकी दृष्टि एक मैनेजर की भांति पैनी है, जो उपलब्ध साधनों से निश्चित अवधि में एक सुनियोजित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए माल, मशीन और मजदूर को लगाता है। यह सब अभी प्रधानमंत्री कर रहे हैं, फिर प्रदेश स्तर पर मुख्यमंत्रियों को भी प्रशिक्षण दिया जायेगा। अब संगठन के पदो पर मेनेजमेन्ट साइंस के डिग्री और डिप्लोमा होल्डरों को प्राथमिकता दी जायेगी। अब समस्या विपक्ष की है जहां सदैव दकियानूसी दृष्टिकोण और प्रतिक्रियावादी सोच व्याप्त रहा। 60 से 80 साल तक के पुराने मॉडल विपक्षी दलो की कुर्सियों पर जमे हैं। देखने वाली बात यह है कि नतीजावाद को वे अपने दल में कैसे जोड़ेंगे। हो सकता है चौधरी और अटलजी पत्राचार पाठ्यक्रम से मैनेजमेन्ट का डिप्लोमा कर लें या रोजगार समाचार में हमे लोकदल, ज.पा, और भाजपा की ओर से 'पार्टी के सचिव पदो' के लिए 'एम. बी. ए. स्नातकों की आवश्यकता' शीर्षक वाले विज्ञापन देखने को मिलें। यह सब इसी दशक में होगा। क्योंकि प्रधानमंत्री का जादू चल निकला है। इस जादू को जादू से ही कम किया जा सकता है। आज राजनीति मे मैनेजमेन्ट साइंस ने खलबली मचा दी है। इस काम को हथकण्डेबाज यूनियन लीडर्स, जुगाडी पत्रकार या सिने-कलाकार नही कर सकता। एक प्रबन्ध स्नातक कर सकता है। देश को नतीजावाद सिद्धान्त से मैनेज करने के लिए अब विपक्ष को भी मैनेजमेन्ट ट्रैनीज अपने दलो मे लेने होगे। अब भतीजावाद की कला काम नही आयेगी। □

पुलिस प्रेस की प्रेम कथा

प्रजातन्त्र में पुलिस और प्रेस के सम्बन्ध का बड़ा सम्बन्ध है। तीनों कन्या राशि हैं। एक ही राशि के जातक होने पर भी पुलिस और प्रेस के सम्बन्धों में प्रेम कथा का माधुर्य नहीं अपितु स्टण्ट फिल्म की 'ढिगडांग' अधिक है। लगभग सालभर पहले ज़िले के प्रमुख कस्बे मे सरेबाज़ार दिवाली की रात थानेदार और कांस्टेबलों द्वारा एक पत्रकार को पीटने का समाचार पढ़कर साधारण नागरिक को आश्चर्य एवं परम विस्मय हुआ। विस्मय इसलिए कि पुलिस तो सड़क पर आवारा घूमने वाले पशुओं की पूछ भी नहीं मरोड़ती फिर पत्रकार को क्यों पीटा। तब से साधारण नागरिक ने पुलिस और प्रेस के सम्बन्धो पर गहरा अध्ययन और मनन किया। फलस्वरूप जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ, वह यही है कि पुलिस और प्रेस (अर्थात् लोकल पुलिस और लोकल प्रेस) के सम्बन्धों को मधुर या कटु बनाना प्रेस पर निर्भर है। पुलिस स्वभाव से ही शालीन और अनुशासित है। इसका रहन-सहन, खान-पान और चाल-चलन सब कुछ मर्यादित है। साधारण नागरिक को दैनिक जीवन में पता भी नहीं चलता कि आस-पास या दूर-दूर तक पुलिस नामक संस्था है भी या नहीं। प्रेस ही साधारण नागरिक को बताती है कि पुलिस है। अकर्मण्य है। भ्रष्टाचार में लिप्त है। पुलिस को भी तभी पता लगता है, वर्ना अपने होने की खबर खुद पुलिस को भी नहीं होती।

स्थिति यह है कि कोई प्रतिबद्ध या निष्ठावान पत्रकार जब किसी पुलिस कर्मचारी द्वारा रिश्वत लेने की खबर को सुर्खियो मे छापता है, (या छपवाता है) तब पुलिस अधीक्षक (जी) को पता लगता है कि अच्छा ! अमुक कर्मचारी (भी) रिश्वत लेने लगा ! अब क्योंकि (अकेले) रिश्वत खाने से पुलिसकर्मियों का पाचन-संस्थान बिगड़ जाता है, इसलिए

पुलिस अधीक्षक उक्त कर्मचारी को 'पथ्य' करवाने के लिए अविलम्ब लाईन हाजिर कर देते है। हां ! यदि अधीक्षक महोदय उक्त कर्मचारी के 'मजबूत हाजमे' के प्रति आश्वस्त हो तो इस प्रकार की कोई कार्यवाही नही की जाती है। इस पर प्रतिबद्ध पत्रकार को गैस बनने लगती है, और वह दुबारा इसी समाचार को छापता है। तब तक कोई फुरसतिया लोकल नेता भी सुर मे सुर मिलाकर ज्ञापन देने पहुच जाता है। तब उदारमना अधीक्षक महोदय रिश्वत लेने वाले अभियोगी कर्मचारी को सस्पेंड करके पथ्य करने के लिए बाध्य कर देते हैं। जितना उदारमना और सहिष्णु पुलिस अधीक्षक होता है, उससे आधा भी उदारमना और सहिष्णु यदि लोकल पेपर का प्रधान सम्पादक हो तो प्रजातन्त्र की रक्षा होती रहती है और पुलिस बनाम पत्रकार की 'डिंगडांग' नही होती। कतिपय मामलो मे पाया गया है कि प्रधान सम्पादक पुलिस की अकर्मण्यता या भ्रष्टाचार में लिप्त होने की खबरों को अपने पत्र में स्थान देने को उत्सुक न होकर केवल सरकारी, अर्द्ध सरकारी या नितांत असरकारी विज्ञापन सग्रह में व्यस्त रहता है। इसके लिए अधिकारियों की सेवा, निष्ठा और कर्तव्य-पालन के सचित्र विवरण या व्यापारियों के बच्चों की शादी या मातृ-शोक, पितृ-शोक और मुनीम-शोक के समाचार तत्परता से प्रकाशित करता है। ऐसे जीनियस पत्रकारों को सरकारी प्रदर्शनियो, सास्कृतिक कार्यक्रमों के निमत्रण पत्र तथा प्रीतिभोज समारोह के निमंत्रण प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। और विज्ञापन ! इनके पत्र का कोई *अंक बिना सरकारी नीलामी सूचना या* निविदा विज्ञापन के नही निकलता। प्रेस से सीधी सड़क बेधड़क कागज की थैली बनाने वाले कबाड़ी की दुकान पर पहुंचता है। पुलिस का दरोगा या 'सिपैया' ऐसे समाचार पत्रो के पत्रकार क्या प्रूफरीडर को भी नही रोकते।

असल मे हमारी सरकार शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की जिस नीति को अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर प्रचारित करती है, पुलिस स्थानीय स्तर पर उसे चरितार्थ करने में सतत् प्रयत्नशील है। व्यापारियों, अधिकारियों और सट्टा सम्राटो से लेकर धटिया उचक्कों तक से पुलिस के मधुर सम्बन्ध

हैं। स्नेक्सबार वाला उबले अण्डों से लेकर दारू बेचता है, पुलिस को बदबू नहीं आती। मिनी बस वाले सवारियों को भेड़-बकरियों की तरह भरकर चलते हैं, पर ट्रैफिक पुलिस के 'नयन सुखों' को नजर नही आते। चौराहे पर चाकू चलते हों, बस्तियों में चोरियां बढ़ती जायें, दूसरे अन्य उत्पात होते रहें—पुलिस मर्यादा-पुरुषोत्तम की तरह अपनी शांत मुद्रा भंग नही होने देती। तब विज्ञापन अभाव से ग्रसित लोकल दैनिक या आकस्मिक पत्र के मुख पृष्ठ पर प्रतिबद्ध पत्रकार पूछता है—पुलिस अकर्मण्य क्यों है। भ्रमवश साधारण नागरिक भी सोचने लगता है—पुलिस अकर्मण्य क्यों है। सभी को पुलिस की अकर्मण्यता रहस्यमयी लगती है, जबकि बात सीधी-सी है। पुलिस विभाग का प्रमुख कार्य क्या है—शान्ति बनाए रखना। शान्ति कब बनी रह सकती है, जब पुलिस शान्त रहे। इसीलिए बड़ी-से-बड़ी घटना हो जाए, जब तक ऊपर से दबाव न आए, पुलिस विचलित नहीं होती। पुलिस शान्ति के मूलमंत्र का पालन करती है पर लोकल प्रेस शान्ति में खलबली पैदा करता है।

लोकल प्रेस को सनसनीखेज खबरें छापने की ललक रहती है। विज्ञापन के अभाव में उप-सम्पादक, स्थानीय संवाददाता और स्तम्भ लेखक को 'स्कूपफेबिया' नामक रोग घेर लेता है और वे स्थानीय कवि की तुकबंदी के बजाए झटकेदार खबरें एकत्र करने में जुट जाते है। रिश्वत, कमीशन तथा अन्य अनियमित तरीकों से पैसा खाने वाले कारनामे लोकल प्रेस मे छापने लगते हैं। यहा तक पुलिस और प्रेस मे कोई द्वन्द्व नहीं। यदा-कदा पुलिस के छोटे कर्मचारी का घोटाला छप जाए तो भी पुलिस को कोई 'फरक नही पेन्दा'। लेकिन जब अचार-चटनियों की विधियां छापने वाला पेपर दिल्ली के दिनमान या बम्बई के ब्लिट्ज की तरह सुर्खियों में पुलिस के भ्रष्टाचार का भण्डा फोड़ने लगता है, और किसी थानेदार या अधीक्षक को भी लपेटने लगता है तो इस प्रेम कथा में जबरदस्त मोड़ आ जाता है, और कोई अप्रिय घटना घटती है, जिसे पढ़कर साधारण नागरिक को अपार दुख और परम विस्मय होता है। प्रजातंत्र की आत्मा को पीड़ा होती है।

प्रजातंत्र पुलिस और प्रेस में प्रेम सम्बन्ध चाहता है। साधारण नागरिक भी यही चाहता है। दोनों में समन्वय वांछित है। दोनों के उद्देश्य 'तू भी मैं भी खाऊं' की सौहार्दपूर्ण नीति पर आधारित होने चाहिए। खाने की मात्रा पर एक-दूसरे से ईर्ष्या नही होनी चाहिए। पुलिस को जो 'हफ्ता', 'महीना' या 'नजराना' मिलता है, वही दशहरा-दिवाली विशेषाक मे विज्ञापन के रूप में प्रेस को भी मिलता (या मिल सकता) है। पुलिस के सहयोग से कितने ही बन गए, और कितने ही बन रहे है। फिर प्रेस क्यों पीछे रहे? सम्बन्ध सुधारने की पहल दोनों ओर से हो। प्रजातंत्र के हितैषी नागरिको का सुझाव है कि आजकल वृक्षारोपण का दौर है। लोकल प्रेस के सम्पादक जी को थाने मे और पुलिस अधीक्षक को स्थानीय पत्र के प्रेस कम्पाउण्ड मे आमंत्रित किया जाकर वृक्षारोपण का समारोह करना चाहिए। दशहरा विशेषाक का विमोचन थानेदार जी से कराया जा सकता है। पुलिसकर्मियो का प्रेसकर्मियों से फुटबॉल मैच कराया जा सकता है। गरज ये कि प्रीत करने के लाख उपाय हैं। किसी को भी आजमाया जा सकता है।

स्थानीय पत्र को दिनमान बनने से विज्ञापन नही मिलने वाले। पुलिस की मेले मे 'प्रशंसनीय व्यवस्था', 'नगर मे अपराधों की संख्या मे तेजी से कमी' आदि समाचारो को देखकर पुलिस के हृदय के तार झनझना जाते है, फिर सम्पादक की मिनी बस या नगर सवाददाता के ऑटो रिक्शा की ओर पुलिस की निगाहें उठती हैं, मगर प्यार से। पत्रकार को कभी दरोगा की कुपित मुद्रा के दर्शन नही होते। प्रजातंत्र में दोनों फलते-फूलते है, और हिन्दी फिल्म की तरह इस कथा का भी सुखांत हो सकता है। □

बड़े बाबू का रथ

प्रत्येक फिल्म मे एक नायक होता है। प्रत्येक कार्यालय में एक बड़ा बाबू होता है। फिल्मों मे नायक प्रायः एक जैसे होते है। 'बड़े बाबू' नामक प्राणी दूसरे 'बड़े बाबू' से सर्वथा भिन्न होता है। प्रत्येक बड़े बाबू का मौलिक व्यक्तित्व होता है। निजी संस्कृति होती है। और नितांत गोपनीय इतिहास होता है। जिस कार्यालय मे, मैं काम करता हूं, वहा भी बडे बाबू है। मेरे बड़े बाबू किसी भी कार्यालय के बड़े बाबू से उन्नीस नही हैं।

वे आज जिस आफिस असिस्टेन्ट पद पर शोभायमान हैं, उसके लिए मुझ जैसे कितने ही कनिष्ठ और वरिष्ठ लिपिक लपकते है, परन्तु स्वयं बड़े बाबू के लिए यह पद कंटकाकीर्ण हो चुका है। अब वे इस पद पर नहीं रहना चाहते, लेकिन पद उन्हे नही छोड़ता, अथवा आगे नही बढ़ने देता। यह उनकी विडम्बना है। मेरा सौभाग्य है। सौभाग्य इसलिए कि वे इस पद पर नही रहे तो अफसर बनेंगे अथवा बाहर निकाल दिये जायेंगे। दोनो ही अवस्थाओ में मुझे उनके दर्शनों से वंचित रहना पड़ेगा। मैं गत 12 वर्षों से इस सुख को भोग रहा हूं। मैंने और भी सुख भोगे, पर यह सुख वर्णनातीत है।

उनकी मेज चित्रकूट का घाट है, जहां अनेक अथवा सभी चपरासी रूपी सन्त प्रतिदिन एकत्र होकर विभिन्न प्रकार की धर्म चर्चाएं करते हैं। मुह लगे 'सन्त' उनकी उपस्थिति में जर्दा बनाकर फांक लेते हैं। बड़े बाबू स्वयं जर्दा नही खाते, वे अन्य बड़े बाबूओं की लीक से हटकर हैं। उक्त 'सन्तगण' उनसे सदा ही ऋण की अपेक्षा रखते है। पात्रता

देखकर बड़े बाबू उन्हें उचित ब्याज दर पर ऋण राशि देकर संकट से उबारते हैं, और अपनी छवि बनाते है।

उन्हें किसी पदार्थ को पाने के लिए यत्न नही करना पडता। उनकी गाठ से भी कुछ नही जाता। इच्छा मात्र से वाछित पदार्थ उनके समक्ष सन्तगणो द्वारा उपस्थित कर दिया जाता है। वड़े बाबू अपने अतिथियों को कम्पनी के खाते मे चाय पिला व स्वय भी प्राप्त कर अतिथि धर्म का पालन करते हैं। गैस ग्रस्त हो जाने से अब कचौरी आदि राक्षसी व्यंजनों से उन्हे वैराग्य हो गया है।

बड़े बाबू गत सात वर्षों से आफिस असिस्टेन्ट हैं। उनका सम्पूर्ण सेवाकाल पन्द्रह वर्ष का हो चुका है। सेवा के प्रथम आठ वर्षों में उन्होने 2 पदोन्नतियां प्राप्त की और 3 बार विशेष वेतन वृद्धि के पात्र समझे गए। फिर विकास गति का 'त्वरण' कम हो गया। कैरियर रूपी रथ अटक गया। तब से वे मेरी भावभीनी आस्था के पात्र हो गए। मेरी आस्था घनीभूत होती गई। अब वे मेरे लगभग इष्ट बन गए हैं। उनके विषय मे मैंने वर्षों चिन्तन किया। इस चिन्तन के फलस्वरूप मुझे कार्यालय नामक सृष्टि के ब्रह्म ज्ञान की चादर का कोना हाथ लगा। मैं समझ गया कि सेवा नियमों की अवहेलना सरकारी और अर्द्ध-सरकारी संस्थानों में भी होती है, यद्यपि वहां स्पष्ट और लिखित सेवा नियम होते है। निजी संस्थानों में जहां कि सेवा नियम प्रायः अस्तित्व में ही नही होते, नियुक्ति, पदोन्नति, वेतन-वृद्धि, सेवा-मुक्ति, अथवा सेवा-हरण आदि की सारी कथा और पटकथा प्रबन्ध वर्ग की कृपा दृष्टि पर आधारित होती है। यह कृपा दृष्टि वृत्ताकार होती है। कृपा दृष्टि का यह वृत बड़ा मायावी है। अगोचर भी है, लेकिन है ऊची चीज। जिस पर यह नही टिकता, वह मेरी भाति बारह साल में भी क्लर्क ही रहता है, जिस पर टिक जाए वह, 'सत् श्री अकाल' न कहे तो भी 'निहाल' हो जाता है। सभी कर्मचारी इस 'प्रभामण्डल' की आकांक्षा रखते हैं। अधिकांश प्रयत्नशील भी रहते हैं। परन्तु कोई परम भाग्यवान

हीं इस कृपा दृष्टिवृत में आलोकित हो पाता है। हमारे बड़े बाबू सदैव इस दिशा में प्रयत्नशील रहे है।

अपनी सेवा के 'शैशव काल' मे वे मात्र डिस्पेच क्लर्क थे। संपूर्ण 'आगम डाक' में से उन पत्रों को सूंघते, जिनमे किसी 'घोटाले' की कस्तूरी महकती थी, यथा सप्लायरों या ठेकेदारों के तकाजा-पत्र जो बिलों के तीन-तीन महिनों तक भुगतान न होने के सम्बन्ध मे होते। इन सुगन्धित पत्र-पुष्पों को वे सम्बन्धित क्रय अधिकारी या लेखाधिकारी के पास न भेजकर मण्डल अधीक्षक के पास भेजते। ऐसा करते रहने से कृपावृत उनकी ओर सरका। वे सीनियर क्लर्क बना दिये गए। अब रिकार्ड सेक्शन भी उनके कार्य-क्षेत्र मे आ गया। यहां आने पर वे और भी सक्रिय हुए। समस्त निर्गम-पत्रों की कार्यालय प्रतिलिपि को वे सूक्ष्म दृष्टि से जांचने लगे। भार्गव डिक्शनरी सदैव उनके पास रहती। वे वर्ण-विन्यास अशुद्धि ढूंढ़ निकालने की कला मे निपुणता प्राप्त करते गए। अशुद्ध वर्ण-विन्यास वाले शब्दों को रेखांकित कर मण्डल प्रबन्धक के पास पॅड में लगाकर भेजने से उन्हें सतर्क और सेवानिष्ठ समझा गया। और वे आफिस असिस्टेन्ट बनाए गए।

यहां पर कथा का इन्टरवॅल हो जाता है। इन्टरवॅल के बाद उनकी कथा बेजान हो जाती है। वे असिस्टेन्ट बने और सुखी जीवन बिताने लगे, लेकिन सुखी जीवन कोई कब तक बिताए। दो साल सूखे निकल गए। उन्होंने रथ से निकलकर 'तेल-पानी' चॅक किया। कोई खराबी नजर नहीं आई। 'किक' भी बराबर लग रही थी, पर गाड़ी स्टार्ट होने का नाम न ले। वे चिन्तित रहने लगे।…'कृपा-दृष्टिवृत' कहां चला गया।

विस्तार सिचाई योजना त्यागकर सघन सिचाई योजना प्रारम्भ की। अपने इमीडिएट बॉस को नाना प्रकार से सुख पहुंचाए, विभिन्न प्रकार के भोग लगाए। रेल का रिजर्वेशन कराया, नल-बिजली का बिल जमा कराया। गाड़ी की वाजिब दाम पर मरम्मत कराई…शुद्ध दूध

की बन्दी लगाई, पर उनका बॉस भी चिकना घड़ा था। पानी नही ठहरा। इन सब इन्जेक्शन और केपसूल से स्थिति में सुधार न होते देख बड़े बाबू ने शल्य-चिकित्सा का आश्रय लिया।

दो अकिंचन लिपिको के गले पर छुरी चलाई। टाईप-राइटर के रिबन चुराने तथा डाक-टिकटो के हिसाब-किताब में घोटाला करने के आरोप मे वे दोनो अभागे अपनी दुर्गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार के आरोप लगाने और सिद्ध करने मे हर बड़े बाबू की तरह हमारे बडे बाबू भी दक्ष हैं। कुछ दिनो कार्यालय मे बड़े बाबू के प्रमोशन क्रमांक तीन की बड़ी चर्चा रही पर शनैः-शनैः बात ठण्डी हो गई। अचानक महाप्रबन्धक के कार्यालय सचिव का सितारा चमका। मेरे बड़े बाबू डिस्पेच तथा रिकार्ड-सेक्शन के क्लर्कों तथा टाइपिंग पूल की समस्त देवियो सहित इस नये सौर परिवार के तत्वावधान मे आ गए। उपरोक्त अकिंचन दोनो बाबू भी श्रम न्यायालय से निर्दोष होकर लौट आए। *यहां पर क्यो और कैसे, आदि तर्कों का वर्णन व्यर्थ है। जिस प्रकार* फिल्मो में संयोग से कुछ भी हो जाता है, निजी संस्थानों में कृपा दृष्टि-वृत से वह सब हो जाता है। अब एक प्रासंगिक फ्लैश बैंक आता है। जब बडे बाबू मात्र क्लर्क थे, कुछ कर्मचारियों ने स्टाफ-यूनियन का गठन करने के प्रयास किये थे, जिससे कि कर्मचारी समय-समय पर लाभान्वित हों और पदोन्नति, वार्षिक वेतन-वृद्धि या वेतन शृंखला में परिवर्तन आदि के सम्बन्ध मे प्रबन्ध वर्ग से स्पष्ट नियम बनाए जाने की बात रखी जा सके। उन दिनों बड़े बाबू का रथ द्रुत गति मे था और कृपावृत की प्रकाश रश्मियां उनको छू रही थी। अतएव उन्होंने ऐसे 'भ्रमित' कर्मचारियों के साथ मिलना-जुलना तक छोड़ दिया। बडे बाबू जैसे उद्यम विचारों के दूसरे कर्मचारियो ने भी कृपावृत की परिधि मे बने रहने की कामना के वशीभूत होकर यूनियन गठन के प्रयासो को असफल कर दिया। यूनियन आज तक नही बनी।···परन्तु निष्ठुर कृपा वृत भी किसी का सगा नही हुआ।

बडे बाबू आज भी धार पर अड़े हुए हैं। कुछ पाने के लिए वे संघर्ष-

रत हैं, उन्हें आशा भी है। मैं भी कुछ पाना चाहता हूं पर संघर्षरत नही हूं, आशा भी नही है। इसलिए मैं उन्हें श्रद्धा से देखता हूं, वे मुझे चश्मे से देखते हैं। शल्य चिकित्सा पर से अभी उनका विश्वास नही गया पर उनके औजार अब जाने क्यों काम नही आते। वैकल्पिक व्यवस्था के अन्तर्गत उन्होने आध्यात्मवाद का आश्रय भी लिया है। 'छोटे देवता जी' से लेकर मोहन टाकीज के आगे बैठने वाले छुटमैये ज्योतिषियों तक को वे अपनी हस्तरेखायें दिखाते रहते है। मानस में दी हुई रामाज्ञा-प्रश्न-शलाखा में भी टटोलते हैं। कभी-कभी कार्यालय में बैठे-बैठे पर्चियां डालकर स्वय ही उठाते हैं, और सम्भावित भविष्य को जानने का प्रयास करते हैं। मन्दिर भी जाते हैं। एक पुष्ट समाचार के अनुसार प्रति सोमवार 'नील-कण्ठ महादेव', मंगलवार को गोदावरीधाम के बालाजी, और शुक्रवार को कँथूनीपोल में सन्तोषी मां के मन्दिर निरन्तर चार वर्षों से जा रहे हैं। बुधवार को इस आयु में भी 'सिबाका-गीत-माला' के लिए बुक रहते हैं। बाकी दिनों का पता नहीं चलता। इन पंक्तियों के लिखने तक उनका रथ यथावत् खड़ा है। □

जोड़े को कौन तोड़े

बुजुर्ग कहते हैं कि कुदरत ने हर सज्ञा का जोडा बनाया है। रात और दिन, धूप और छाया, नर और मादा, कम और ज्यादा। फिर भी जब जोड़ा सामने आता है तो लोगो की नजर में खटकने लगता है। दिलीप कुमार और वैजयन्ती माला की जोडी जमने लगी तो राज कपूर बीच मे आ गए। ओ. पी. नैयर और आशा भौंसले की जोडी मे राहुलदेव बर्मन टपक पडे। फिर भी जोड़ा या जोड़ी बनना फिल्मों में अभी भी जारी है। और फिल्म ही क्यों, साहित्य में आ जाइये। काका हाथरसी और बैरागी या नीरज और कुमार शिव की जोड़ी क्या किसी से छिपी है।

वैसे देखा जाए तो जोड़ी मे लाभ अधिक हैं, हानि कम। सड़क पर घूमने वाले हमारे क्षेत्र के विधायक ने जब भी सुखाडिया जी से जोडी बनायी तो मंत्री पद पर आसीन हो गए थे। सयुक्त सरकारें बन जाती है जनाब ! रशीद अहमद पहाडिया से नटनियां जुड़ गई तो मास्को की सैर कर आयी। शेखावत जी से महारावल मिल कर चले तो विधान सभा अध्यक्ष बन गए। जोडा टूटा तो वही हुआ, जो 'गंगा जमना' मे लताजी ने गाया, 'गजब भयौ रामा, जुलम भयो रे।'

सयाने लोग जोडी के महत्व को समझते हैं। कांग्रेस का पहला चुनाव चिन्ह 'दो बैलो की जोड़ी' ऐसे ही नही रखा गया था। नादानो की बात दूसरी है। डा० सुब्रमण्यम स्वामी हठधर्मी के कारण चन्द्रशेखर से भिडे और आज विजीटिंग प्रोफेसर बनकर जीविका यापन कर रहे हैं। दूसरी ओर जार्ज और मधु लिमए हैं। सोपा से संसोपा में गए, जनता

मे आए। चौधरीजी के दल में गए फिर जनता में आ गए। खूब कूदे-फांदे। डा. लोहिया से जयप्रकाश नारायण और चौधरी से चन्द्रशेखर तक के अखाड़ों में—पर पट्ठों ने जोड़ी नही तोडी। तो यह है समझदारी वाली बात।

ये जमाना वो है कि अकेला कुछ कर ही नही सकता, उसे साथी चाहिए। पार्टनर कह लीजिए। गरज यह कि एक ओर एक मिलकर ही दो होंगे, वर्ना ताली भी नहीं बज सकती। हमारे मित्र की मकान-मालिक से जोड़ी बनी हुई है। दूसरे किरायेदारों की नाक में दम है, पर मित्र महोदय मकान मालिक के टेलीफोन और फ्रिज का मुक्त उपयोग करते हैं।

जोडे का बनना भी एक महत्वपूर्ण घटना होती है। कभी बरसों लग जाते हैं, पर बात नही बनती और कभी चटपट माल तैयार हो जाता है। लाभ और अपवाद स्वरूप हानि के लक्षण भी प्रायः चटपट और कभी-कभी बहुत देर से प्रकट होते हैं। हमारे मौहल्ले में एक चाइल्ड स्पेशलिस्ट आकर रहने लगे। उनके बोर्ड पर कभी मानधाता की कार वाली स्कीम का पम्फलेट चिपक जाता तो कभी 108 कुण्डीय यज्ञ का, गरज यह कि महीनों तक पता ही नही चला कि अगला बाल रोग विशेषज्ञ है। जिसको पता था वह पांच रुपये फीस देकर अपने बच्चे को तीन बार दिखा लेता था। लेकिन जोड़ा विधाता बनाता है। इसी सड़क पर एक जनरल स्टोर था, देखते ही देखते जनरल स्टोर दवा की दुकान बन गया और डॉक्टर के नुस्खे में ऐसी दवायें शामिल होने लगीं, जो नाक की सीध में मिलती थी। बस फिर क्या था, 'शंकर से जयकिशन टकराया और दोनों को मजा आया।' डॉक्टर चाइल्ड स्पेशलिस्ट था तो मेडिकल स्टोर वाला भी कम न था। उसने डॉक्टर को ऐसे-ऐसे नुस्खे बताए कि बच्चे तो बच्चे, बड़े-बूढ़े भी इलाज कराने आने लगे। और दोनों की चांदी हो गयी।

ऐसी ही एक अभिनव जोड़ी कार्तिक मेले मे बनी। अभिनव इस-

लिए कि यह दो व्यक्तियों मे न होकर टूरिंग सिनेमाओं मे थी। मेला ज़ोरों पर था। एक में चली 'चोरों की बारात' और दूसरे में चली 'मदारी'। 'मदारी' के आगे 'चोरो की बारात' ने घुटने टेक दिए। 'मदारी' मे भीड उमड पडी और 'चोरों की बारात' के टिकटघर का बाबू मूगफली चबाने लगा। एक दिन निकला, दूसरा दिन निकाला। इस बीच मां सरस्वती की कृपा से वुद्धि प्राप्त हुई, और दोनो टाकीजों मे 'मदारी' दिखाई जाने लगी। दो रील चलती, और वहां से लेकर इस टाकीज़ मे आ जाती। रिवाइन्ड होती और 'चलो जी मदारी, आ गया इधर भी मदारी। उधर मदारी की तीसरी और चौथी रील, इधर पहली और दूसरी। वहां से तीसरी और चौथी रील, इधर पहली दूसरी। वहा से तीसरी और चौथी रील उतरती और फिर इधर फिल्म शुरू। तो इसे कहते हैं जोडी।

पर यह जोडी भी समानधर्मी व्यवसाय वाली संस्थाओ मे थी, कभी-कभी असमान व्यवसाय वाली संस्थाओ में भी जोडी बना दी जाती है। हमारे नगर के एक प्रतिष्ठित पब्लिक स्कूल की विवरण-पत्रिका के अनुसार बच्चो को ड्रेस का कपड़ा छप्पनजी मानजी की दुकान ही से लेना होता है। अन्य दुकान का कपड़ा बिल्कुल नही चलता है। अब क्योकि स्कूल प्रतिष्ठित है, इसलिए जो अपने नौनिहालो को उसमे पढाना चाहते हैं, वे छप्पनजी मानजी की दुकान से कपडा खरीद लेते हैं। इस जोडी के पीछे नेताजी कहते हैं कमीशन वाली बात है। होगी ! पर…जोडा भी तो हो सकता है। ईश्वर का बनाया जोड़ा—आज तक किसने तोड़ा।

कथा बाचने वाले पण्डितजी भी अपने जोड़ीदार ढोलकिये को साथ रखते हैं। 'कथा करानी है तो उसे भी बुलाओ।' कारीगर (मेसन) लोगो की एक पसंदीदा कुली होती है। जोड़ी वाली बात है। डॉक्टरों को खास एक्सरे मशीन वाले के खिंचे हुए प्रिन्ट से ही मरीज़ की बीमारी की जड़ पकड मे आती है। इस जोड़े को भी मजबूरी और

वीमारी का मारा रोगी नही तोड़ सकता। इस प्रकार के जोडो के पीछे एक साधारण-सा अन्धविश्वास भी होता है। कुछ जोड़ों के जोड़ीदार तो धन्धे की लूटपाट करते ही हैं, कुछ जोड़े मजबूरी में भी बन जाते हैं, और फिर हिट होने पर स्वार्थवश बने रहते है। कुछ मे केवल ईश्वर की इच्छा ही होती है।

जोड़ा जब तक सफल रहता है, तब तक लोगों की आंखों मे खटकता है। जोड़ा जब फेल होने लगता है, तब लोग सुख की नीद लेने लगते हैं। जब तक जोड़ा सफल रहता है, तब तक कोई एक-दूसरे की बुराई नही करता। जब जोडा पिटता है, तब जोडीदार स्वयं अपने साथी के बारे में रहस्योद्घाटन करने लगते है।

लेकिन हर वार लाभ की दृष्टि से जोड़ी बनाई जाती हो, ऐसा नहीं है। जानबूझकर बदनामी या हानि उठाने के लिए भी जोडे बनाए और निभाए जाते है। चेतन आनन्द वरसों से प्रिया को जोडीदार बनाए हुए हैं। चरणसिंह ने राजनारायण को जोडीदार बनाया और अपना नाम डुबाया। लोगों ने पहले भी समझाया था, पर माने कौन! जोडा है तो बस जोड़ा है। □

मैं महान् नहीं बन सका

वह कविता लिखता था। लोग उसकी प्रशंसा करते कि वाणिज्य जैसे शुष्क विषय का स्नातक होने पर भी उसकी लेखनी मे सरस्वती का वास है। लेकिन मुझे उससे ईर्ष्या थी, क्योकि मैं भी कविता लिखता था पर उनकी तरह मेरी प्रशंसा कोई नही करता। एक दिन मैंने उसे रास्ते में रोक कर पूछा, 'तुम कविता क्यो करते हो? व्यग्य क्यो नही लिखते।'

वह मेरी मूर्खता पर हंसा। 'मैं महान बनना चाहता हूं—कविता मैंने इसीलिए चुनी है।'

मैं ईर्ष्या से जल गया। मैं महान कवि बनना चाहता था और यह मेरे रास्ते में आना चाहता है। घर आकर मैंने क्षोभग्रस्त होकर दो कविताएं लिख डाली। सदा की भाति मेरी पत्नी ने उन्हें पढा और सराहा, लेकिन मुझे सन्तोष नही हुआ।

एक दिन पान वाले ने मेरा उधार खाता बन्द कर दिया। उस संकटपूर्ण घड़ी में वह प्रतिद्वन्द्वी भी वहीं उपस्थित था। मैं घोर अपमान में दुबारा जला। मैंने फिर दो कविताएं लिखी, पत्नी ने पढ़ा और फिर सराहना की।

अगली सुबह उसने मुझसे कहा, 'तुम महान् कवि बनने का विचार छोड़ दो। मेरी भांति केवल महान् बनो। तुम में पर्याप्त सम्भावनायें हैं।'

मुझे उसके प्रस्ताव का अर्थ समझ में नही आया। असमंजसता की

स्थिति में मैंने दफ्तर में ही दो कवितायें लिख डालीं। दफ्तर में पत्नी नहीं थी, अफसर था। उसने मुझे खूब लताड़ा।

फिर एक दिन वह प्रतिद्वन्द्वी घर पर आ धमका। 'मेरे प्रस्ताव पर विचार किया या नही।'

मैं कुछ याद करने लगा, पर कुछ याद नहीं आया। 'कैसा प्रस्ताव।'

उसका चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उसने मुझे बांहों में भर लिया। 'आह ! साथी, तुम तो महान् व्यक्ति की दूसरी अहर्ता की पूर्ति भी करते हो।···आओ। महान् बनने का अवसर व्यर्थ मत गंवाओ।'

मैंने हथियार डाल दिए। कविताएं बहुत लिखी— एक न छपी। पत्नी बेचारी पतिव्रता। मैं यदि तबला बजाने लगूं, तो उसे भी सराहेगी, लेकिन···पत्रिकाओं के सम्पादक ! वे मेरी कविताओं को कभी छपने योग्य नही समझेंगे। महान् कवि बनने से अच्छा है, केवल 'महान्' बना जाए।···बाद में कवि भी बना जा सकता है। यह सोचकर मैंने कहा, 'मुझे तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है, अपना मन्तव्य कहो···!'

'किसी भी कवि के महान कवि होने की सम्भावना आजकल बहुत कम रह गई है। इसका एक कारण तो यह है कि पत्रिकाओं मे कविता के लिए बहुत कम पृष्ठ होते हैं। कहानी, लेख या संस्मरण अधिक छपते हैं। विज्ञापन शुल्क चुकाकर कविता छपवाने का जुगाड़ हो तो और बात है। कवि-सम्मेलन के नाम पर जो तमाशा आयोजित किया जाता है, उसमें भी लतीफेबाज मसखरे ही बाजी मार ले जाते हैं। शुद्ध कवि वहां भी मात खाता है। अब क्या बचा। रेडियो···टेलीविजन···और फिल्म। तो यदि आप मे इतना दम है तो बात दूसरी है अन्यथा···।'

उसके प्रवचन की भूमिका ही इतनी भयंकर थी कि मुझे गैस बनने की शिकायत होने लगी। मैंने कहा कि, 'तुम असली बात पर क्यों नही आते।'

'इसके विपरीत महान् बनना आज भी अपेक्षतः सरल है। महान् बनने की योजना का क्रियान्वयन यदि सूझबूझ से किया जाए तो लगभग सात से दस वर्ष मे महान् बना जा सकता है।...और साथी! जब मैं महान् कहता हूं तो मेरा आशय महान् से ही है। चर्चित अथवा ख्यात होने से नही। वह तो आप सात से दस दिन मे हो सकते है।'

'तुम इस दिशा मे कब से जुटे हो।'

'दो साल से।'

'कुछ मिला।'

'महान् व्यक्ति को खोना पडता है, पाने की चिन्ता करने वाला महान् नही हो सकता।'

मैं चुप रह गया। वह फिर शुरू हुआ, 'महान् व्यक्ति का पहला लक्षण है, वह इम्पेक्यूनियस होता है, अर्थात् कडका, जैसे कि आप और मैं। कड़की की भट्टी में महानता रूपी सोना तपकर और भी निखर जाता है। महान् व्यक्ति आत्म-विस्मृत होता है—जिसे साधारण बुद्धि के लोग भुलक्कड़ कहते हैं। यह चिन्ह आप में मैंने देखे हैं, इन्हे आप और अधिक विकसित करें। याद रखना सरल है, भूल जाना कठिन है, इसलिए आरम्भ में अभ्यास करना पड़ेगा। याद रखकर भूलना होगा, फिर आप सहजता से भूलने लगेंगे। जैसे-जैसे अर्थाभाव से गुजरेंगे... जैसे-जैसे भूलने लगेंगे—'आप साधारण से विशिष्ट, और विशिष्ट से उत्कृष्ट होते जायेंगे।'

'पर महान्!...महान् कब बनेंगे?'

'उत्कृष्टता की सीढ़ियो के अन्तिम छोर पर महानता का द्वार है...।'

मुझे उसकी बातों में किन्ही कथित भगवान की वाणी की झलक का अहसास हुआ। बहुत जोर मारने पर भी याद नही आया, ऐसी बातें रजनीशजी की हैं या महेश योगी की। अपनी परिस्थितियों के सन्दर्भ मे

मैंने महान् बनने की दिशा में प्रयास करना श्रेयस्कर समझ लिया। उसी समय से वह मेरा मित्र बन गया। मैंने उसे सादर विदा किया और प्रयत्नशील हो उठा। अपने मित्र को पत्र लिखा और अपने पिता के पते पर भेज दिया। इस भूल को मैंने जान-बूझकर किया। इससे मुझे प्रेरणा मिली। पत्नी ने अगरबत्ती का पैकेट मंगाया, मैं दहीवड़े ले आया। वह सिर पीटकर रह गई। बाथरूम का नल खुला छोड़ दिया, जब मकान-मालिक को पता लगा तो उसने मुझे बुरा-भला कहा। ऐसी गल्तियां करने से मुझे अभ्यास होता गया। मेरे उपरोक्त मित्र ने मुझे इम्पेक्यू-नियस होने की दिशा में भी प्रयास करने की प्रेरणा दी। मुझे प्रोत्साहित करने के लिए उसने सौ रुपये उधार मागे। मैंने पचास दिये। उसने मेरी जर्सी भी मांग ली। मुझ जैसे अल्प वेतन भोगी के लिए यह इजेक्शन पूरे महीने के लिए पर्याप्त था।

महानता की दिशा में अग्रसर होने के लिए मेरे सखा ने कुछ विलक्षण युक्तियां सुझायीं, जो 'टू-इन-वन' थी। उसके बताए अनुसार मैंने 'स्वामी-दादा' (फिल्म) के दो टिकटों की एडवांस बुकिंग कराई उस समय मुझे सिनेमा-हाल से तीन किलोमीटर दूर अपने ही घर में रहकर प्याज की चटनी पीसनी है। ऐसा करके मुझे कड़की और विस्मृति का दोहरा उपार्जन करना था, लेकिन मेरी अर्धांगिनी ने सही समय पर मेरी जेब टटोली, और मुझे फटकारा। तब निरुपाय साइकिल लेकर मुझे सिनेमा लपकना पड़ा। निराश दर्शनार्थियों में एक दम्पत्ति को मैंने चार-चार रुपये के टिकट बेचे, उन्होंने दस रुपये का नोट दिया और हार्दिक धन्यवाद देकर चले गए।

दूसरे दिन मेरे मित्र ने पूरा वृतांत सुनकर गम्भीर वाणी में वचन कहे, 'प्रयासों की गम्भीर असफलता से कापुरुष दुखी होते है। कर्मठ नही। महानता के लक्ष्य में बाधायें विभिन्न प्रकारके क्षुद्र प्रलोभन और उपलब्धियों के रूप में आती है। उन्हे समझो। तुम्हे पाना नही खोना है।'

फिर उसने वे दो रुपये मुझसे हथिया लिए। दोहरे परिणाम प्राप्त करने की कई युक्तियां उसने मुझे बताईं, परन्तु मैं पहले ही खस्ताहाल था। अर्थाभाव में घुला हुआ बाबू। तो भी मैंने यथासम्भव प्रयास किये और शनैः शनैः दृढ़ कड़की को प्राप्त हुआ। दाल-रोटी की चिन्ता का भार स्मरण-शक्ति और बुद्धि पर वैसे भी था। प्रयास करने से मैं दफ्तर के काम में भी भूल करने लगा। मुझ पर बॉस की फटकार पड़ने लगी। मेरे साथ काम करने वाले बाबू मुझसे सहानुभूति जताते, लेकिन मैं अपने प्रयासों की सफलता से मन-ही-मन गद्‌गद् हो जाता था। एक दिन उसने कहा, 'तुम आजकल कितनी कवितायें प्रतिदिन लिखते हो।'

मुझे आश्चर्य हुआ। उसी के कहने से मैंने महान् कवि बनने के अपने लक्ष्य को संशोधित किया था, और केवल महान् बनने में जुट गया था। 'अब कविता से क्या प्रयोजन।'

'मैंने कभी की छोड़ दी!' मैंने बताया।

'नहीं, कविता लिखना मत छोड़ो। कवितायें लिखो, ज्यादा लिखो। दस, बारह···या और भी अधिक।'

'दस-बारह कवितायें···प्रतिदिन!'

'हां! प्रयास से सब सम्भव है। आनन्द बक्षी की ओर देखो। कितने गीत लिखते हैं···तुम भी लिखो। ऐसा करने से तुम्हें तीसरा लक्षण प्राप्त होगा। महान् व्यक्ति का दाम्पत्य-जीवन असफल होता है। अनिवार्यतः असफल। महान् होने के लिए विधुर, पत्नी द्वारा परित्यक्त अथवा वैध रूप से डाईवोर्सड होना जरूरी है। पत्नी का डाईवोर्स पति को महान होने के लिए एक प्रकार का फोर्स है, शक्ति है। इन शब्दों के गूढ़ अर्थों पर पहुंचो।'

मैं उसकी बात ध्यान से सुन रहा था पर भीतर-ही-भीतर उसे गालियां दे रहा था। अरे दुष्ट! तू मुझसे क्या-क्या अन्याय करवाना चाहता है। लेकिन उसका सूक्ष्म दर्शन प्रखर था। वह बोला, "मैं जानता

हूं तुम्हारे अन्तर्मन में मन्थन हो रहा है।···मतिवान के मन में ही मंथन होता है। मन्द के मन में नही। मन्थन होते दो, पर महान् होने के लिए दाम्पत्य का असफल होना बहुत जरूरी है। मैंने इसीलिए शादी नही की।···तुम निर्धन हो—पर-स्त्री का साहचर्य एफोर्ड नहीं कर सकोगे। दब्बू हो—पत्नी को मारपीट नही कर सकते। नशाबंदी पर उतारू राज्य सरकार तुम्हे मद्यप नहीं होने देगी।···कैसे दाम्पत्य जीवन में आग लगेगी। इसीलिए कविता करो। इससे तुम्हें इच्छित फल की प्राप्ति होगी।

मैं उसके गहन-ज्ञान से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता था। निःसन्देह मेरे पास कोई उपाय न था—कविता थी। मैं उत्साहपूर्वक कविता लिखने लगा। पत्नी को प्रसन्नता हुई। मैंने कविताओं की संख्या बढ़ा दी। उसकी प्रसन्नता और बढ़ गई। वह पड़ोस की स्त्रियों को मेरी कवितायें सुनाने लगी। स्त्रियां मनोयोग से मेरी कवितायें सुनती और मेरी कविताओं की और उसके भाग्य की सराहना करती' जिसे मुझ जैसा कवि पति मिला। कुछ अबलाओं ने घर पर अपने प्राणनाथ से भी कविता लिखने का आग्रह किया। वे गरीब भी कविता लिखने लगे। लेकिन यह नक्शा बीस-पच्चीस दिन चला। जब मेरी कविताओं की संख्या प्रतिदिन चार से छः और आठ-दस तक पहुंची, तो मेरी पत्नी को चिन्ता हुई। उसने अपने पिता को पत्र लिखा। मेरे आदरणीय ससुर आ धमके। उन्होंने मुझे समझाया, पर महान बनने का लक्ष दृढ़ हो चुका था। उस भोले-भाले प्राणी की क्या मजाल थी, जो मुझे विचलित कर पाता। हारकर उन्होंने मेरे पिता को लिखा। कुछ दिनों उन दोनों में लिखा-लिखी चली। इधर मेरी कविताओं की संख्या बढ़ती चली गई। परिणामस्वरूप, दो महीनों में मैंने महान होने की तीसरी अर्हता भी प्राप्त कर ली। ससुर साहब अपनी लड़की को लेकर चले गए। पड़ोस की देवियों ने अपने पति देवों को कविता न लिखने का स्टे-आर्डर दे दिया। घर में मैं रह गया, आत्मविस्मृति रह गई, असफल दाम्पत्य रह गया और कड़की कहां जाती, वह भी रह गई।

मैं पुनः उसकी सेवा मे उपस्थित हुआ। मैंने कहा, 'हे सखा! मैं तीनो अहर्तायें प्राप्त कर चुका हू। अब महान बनाओ।'

'तुमने लक्ष पा लिया। इनको देखो, उसने दीवार लगे चित्रों की ओर इंगित किया, 'क्या इनमे कोई महान नही।' मैंने व्यग्रतापूर्वक उन चित्रो को देखा, देश-विदेश के महान व्यक्तियों के चित्र थे।

'लेकिन इन सबका क्या मतलब।'

'मतलब है! तुम जगदीश को जानते हो। जगदीश चपरासी।'

'हां।'

'उस पर कल से मेरी दृष्टि से देखना। वह भी मेरी और तुम्हारी तरह महान व्यक्ति के लक्षणों से ओत-प्रोत है। पिछले साल उसकी पत्नी भाग गई। उधार लेकर काम चलाता है, और एकदम डफर समझा जाता है। अर्थात् आत्मविस्मृत! हम तीनो महानता के द्वार पर खड़े हैं, हम महान हो गए हैं।'

'मैंने अपने अगल-बगल मे देखा, मुझे विश्वास (ही) नही हुआ।'

'हां, हम महान हैं। इस क्षण को हम महान व्यक्ति की भांति जी रहे हैं। अब से हर पल हमारी महानता का साक्षी होगा। अब तुम्हारी जीवनी पाठ्यक्रम की पुस्तको में पढ़ाई जाएगी। लोग हम पर जीवनियां लिखकर कमायेंगे। छुटमैये संपादक के नाम पत्र लिखकर तुम्हारे मेरे और जगदीश प्योन के भी संस्मरण छपवायेंगे। मेरे जन्म का तो राज पत्रित अवकाश भी रहेगा, मैं तुम्हारे और जगदीश प्योन के लिए अभी इस बात का दावा नहीं कर सकता।

दूसरे दिन अफसर के बुलाने पर चेम्बर मे गया। बिना पूर्व सूचना के दफ्तर से गायब रहने के उपलक्ष मे उसने मुझे तगड़ी 'कैपसूल' दी। मैं मन में सोच रहा था, 'डांट ले, कमी मत रख! बाद में रोएगा। मेरा क्या है, मैं तो हो गया महान्!'

घर लौटा तो मेरा ब्रदर-इन-लॉ आस्तीनें चढाए दरवाजे पर ही मिल गया। वह पुलिस में ए० एस० आई० था। मुझे देखते ही दबोच लिया।

'क्यों कलाकार, क्या ड्रामा फैला रखा है।'

मेरी महानता तिलमिला कर रह गई। लेकिन मुझे धैर्य से काम लेना ही उचित लगा। मैं हिए तराजु तौल कर कुछ कहता, इससे पूर्व ही उसने कहा, 'देखो श्रीमान ! हम भी छंटे हुए आदमी हैं। दो हाथ में तुम्हें सही जगह पर ला देंगे। तुम्हारी यह मजाज कि हमारी सिस्टर को घर से निकाल दिया और मेरे फॉदर से···। मैं सिस्टर को ले आया हूं, वह अन्दर है। यहीं रहेगी। तुम फैसला करो कि गृहस्थी में रहना है कि मेरे साथ चलना है।'

मैंने उसके बजाए उसकी सिस्टर के साथ रहने में ही अपनी खैर समझी। वह मेरी साहित्य साधना को एक थैले में भरकर ले गया। 'यह रद्दी मैं ले जा रहा हूं, आज के बाद केवल दूध वाले का हिसाब लिखना, कविता की तो···।'

इस प्रकार मैं महान् होते-होते रह गया। □

मैं पुनः उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। मैंने कहा, 'हे सखा! मैं तीनो अहर्तायें प्राप्त कर चुका हूं। अब महान बनाओ।'

'तुमने लक्ष पा लिया। इनको देखो, उसने दीवार लगे चित्रों की ओर इंगित किया, 'क्या इनमें कोई महान नही।' मैंने व्यग्रतापूर्वक उन चित्रों को देखा, देश-विदेश के महान व्यक्तियों के चित्र थे।

'लेकिन इन सबका क्या मतलब।'

'मतलब है! तुम जगदीश को जानते हो। जगदीश चपरासी।'

'हां।'

'उस पर कल से मेरी दृष्टि से देखना। वह भी मेरी और तुम्हारी तरह महान व्यक्ति के लक्षणो से ओत-प्रोत है। पिछले साल उसकी पत्नी भाग गई। उधार लेकर काम चलाता है, और एकदम डफर समझा जाता है। अर्थात् आत्मविस्मृत! हम तीनों महानता के द्वार पर खड़े है, हम महान हो गए हैं।'

'मैंने अपने अगल-बगल मे देखा, मुझे विश्वास (ही) नही हुआ।'

'हां, हम महान हैं। इस क्षण को हम महान व्यक्ति की भांति जी रहे हैं। अब से हर पल हमारी महानता का साक्षी होगा। अब तुम्हारी जीवनी पाठ्यक्रम की पुस्तकों मे पढ़ाई जाएगी। लोग हम पर जीवनियां लिखकर कमायेंगे। छुटभैये संपादक के नाम पत्र लिखकर तुम्हारे मेरे और जगदीश प्योन के भी संस्मरण छपवायेंगे। मेरे जन्म का तो राज पत्रित अवकाश भी रहेगा, मैं तुम्हारे और जगदीश प्योन के लिए अभी इस बात का दावा नहीं कर सकता।

दूसरे दिन अफसर के बुलाने पर चेम्बर में गया। बिना पूर्व सूचना के दफ्तर से गायब रहने के उपलक्ष में उसने मुझे तगड़ी 'केपसूत' दी। मैं मन मे सोच रहा था, 'डांट ले, कमी मत रख! बाद में रोएगा। मेरा क्या है, मैं तो हो गया महान्!'

घर लौटा तो मेरा ब्रदर-इन-लॉ आस्तीनें चढाए दरवाजे पर ही मिल गया। वह पुलिस में ए० एस० आई० था। मुझे देखते ही दबोच लिया।

'क्यों कलाकार, क्या ड्रामा फैला रखा है।'

मेरी महानता तिलमिला कर रह गई। लेकिन मुझे धैर्य से काम लेना ही उचित लगा। मैं हिए तराजू तौल कर कुछ कहता, इससे पूर्व ही उसने कहा, *'देखो श्रीमान ! हम भी छंटे हुए आदमी हैं।* दो हाथ में तुम्हें सही जगह पर ला देंगे। तुम्हारी यह मजाल कि हमारी सिस्टर को घर से निकाल दिया और मेरे फॉदर से…। मैं सिस्टर को ले आया हूं, वह अन्दर है। यहीं रहेगी। तुम फैसला करो कि गृहस्थी में रहना है कि मेरे साथ चलना है।'

मैंने उसके बजाए उसकी सिस्टर के साथ रहने में ही अपनी खैर समझी। वह मेरी साहित्य साधना को एक थैले में भरकर ले गया। 'यह रद्दी मैं ले जा रहा हूं, आज के बाद केवल दूध वाले का हिसाब लिखना, कविता की तो…।'

इस प्रकार मैं महान् होते-होते रह गया। □

ईमानदारी! ईमानदारी!! ईमानदारी!!!

इस कम्पनी मे ईमानदारी कूट-कूट कर भरी हुई है। शहर की कई कम्पनियों की तुलना मे इस कम्पनी की छवि बहुत साफ-सुथरी है। लगभग वैसी, जैसी कि फिल्मी सितारों में मनोजकुमार की।

यहां का चपरासी बहुत ईमानदार है, वह अपना टिफिन कैरियर फैक्टरी के 'विम' से साफ करता है। और अपने चरित्र की तरह उज्जवल बनाए रखता है। कैन्टीन में बिकने वाली सात रुपये किलो वाली नमकीन भरकर ले जाता है। बाजार में चौदह रुपये किलो में बेच देता है। बाबू तो वैसे भी बापू का समान अर्थी होता है। यहा का बाबू ईमानदारी के प्रति विशेष सतर्क है। वह आये दिन बालपेन में रिफिल डालकर ले जाता है। और खाली करके ले आता है। एक बाबू को मैं जानता हूं, वह रोज कागज का लिफाफा ले जाता है। बाजार में इसका मूल्य मात्र पांच नये पैसे है।

यहां का परचेज विभाग ईमानदारी के मामले मे पिछले कई वर्षों से 'टॉप' पर है। किसी भी विक्रेता से कोटेशन लेकर बिना किसी दान-दक्षिणा के उसको परचेज आर्डर बना दिया जाता है। इस ईमानदारी का गुणगान सप्लायर्स स्वयं करते हैं। वास्तविक प्रशसा भी इसी को कहते हैं। यहां पर नकद मे कुछ नही लिया जाता। प्रकारान्तर मे ली या दी जाने वाली सेवा/वस्तु रिश्वत के अर्थों में नही समझी जाती। यहां पर कम्पनी के काम से निजी वाहन लाने/ले जाने के लिए पैंतीस पैसे प्रति किलोमीटर की दर से भत्ता मिलता है। राष्ट्रीय हित मे यहां का समझदार कर्मचारी फैक्ट्री से बाहर अपना स्कूटर ले जाकर चौराहे की किसी भी पान वाले की दुकान पर खड़ा कर देता है। और सार्व-

जनिक टैम्पो द्वारा शहर चला जाता है। इस प्रकार न केवल सब्जी मन्डी तक का काम करने में 4.20 पैसे बचाता है, अपितु पैट्रोल का अपव्यय न करके परोक्ष रूप में राष्ट्रीय सेवा करके अपना परलोक भी सुधारता है ।

इस कारखाने को सुरक्षा पुरस्कार पिछले दो वर्षों से प्रतिवर्ष मिलता आ रहा है । काम के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं की संख्या लगभग शून्य है । यहां के प्रबन्धकों ने उत्पादन ठप्प करके वह बास ही तोड़ डाला जिससे कि बांसुरी बज सकती हो । प्रबन्धक वर्ग अपने काम के लिए सरकारी अफसरों को उत्कोच न देने की परम्परा को बहुत शालीनता से निभा रहा है। चुंगी अधिकारियों, शुल्क अधिकारियों तथा रेलवे अधिकारियों को भीतरिया कुण्ड या गेपरनाथ में पिकनिक पर आमंत्रित किया जाता है । परन्तु नकद ! कदापि नहीं !

प्रबंधक वर्ग ईमानदारी के पीछे हाथ धोकर पड़ा है । उनके चरण-चिन्हों पर अधिकारी चलते हैं। प्रत्येक कार स्वामी अधिकारी को कार भत्ता मिलता है । परन्तु अधिकारी अपनी कार को कारखाने की दिशा में मुंह करके भी घर पर खड़ी नहीं करते ।

कुछ रंगमंचीय कलाकार प्रसिद्ध स्टारों की हुबहू आवाज निकाल लेने में सिद्ध होते हैं। यहां के स्टोर्स विभाग के बड़े बाबू प्लांट के बड़े-बड़े अफसरों के हस्ताक्षर बनाने में उसी निपुणता को प्राप्त हैं। स्टोर्स में जब भी किसी वस्तु की वास्तविक मात्रा पुस्तक मात्रा से कम होती है, ये अपनी कला द्वारा सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं ।

ईमानदारी का यह आलम है कि जैसे राजा पोरस के राज्य में लोग अपने घरों पर ताले नहीं लगाते थे, उसी प्रकार यहां के वाचमेन रात को ताश खेलते हैं, या फैक्ट्री के बाहर मामा लोगों की झुग्गियों की ओर अभिसार की कामना के लिए विचरण करते रहते हैं । रात को चोरी होने की जरा भी शंका नहीं। ऐसा कार्य तो दिन में ही हो जाता है ।

ऑडिट वाले एकाउन्टस पर इतना विश्वास करते हैं कि बस ल ल स्याही से टिक मार्क करना ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते है। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि केन्द्र सरकार या राज्य सरकार ईमानदारी के लिए इस फैक्ट्री को ट्राफी क्यो नही दे देती।

रात पाली में कोई कर्मचारी सोते हुए नही पकड़ा गया। कर्मचारी अपनी जगह, सुपरवाईजर अपनी जगह से हिले नही (नीद मे भला हर कोई तो चल नही सकता)। काम के प्रति इतनी निष्ठा और कहां मिलेगी।

पिछले वर्ष प्रबंधक जी ने शून्य त्रुटि अभियान का आह्वान किया था। इसमें अभूतपूर्व सफलता मिली। लोग फैक्ट्री के दरवाजे से घुसे हैं दीवार फांद कर नही आए। गाड़िया स्टेण्ड पर खड़ी की, केन्टीन में नही की। बाबू लोग कुर्सी पर ही बैठे, पंखो पर नही बैठे। पत्रिकाएं सीधी ही रखकर पढ़ी, उल्टी नही। खाना अपने हाथ से अपने ही मुह में डाला, कही और जगह नही। यह सब कार्य इतनी सफलता से होता रहा कि प्रबंधक महोदय गद्‌गद् हो गए और छः महीने मे ही 'शून्य त्रुटि अभियान'' का समापन करा दिया गया।

यहा के अधिकारियो को फर्नीचर खरीदने के लिए अनुदान मिलता है। यह फर्नीचर वह अपनी मर्जी से खरीद सकते हैं, और बिल लाकर जमा कर देने भर से काम चल जाता है। अधिकारी इतने भोले हैं कि बिल पलंग और गद्‌दे का बनवाकर घर मे अलमारी ले आते हैं। जिन्हें घर में नौकर रखने का पैसा मिलता है, ऐसे वरिष्ठ अधिकारी माली के वेतन का हस्तलिखित बिल अपने हाथ से बनाकर अपने पिताजी का अंगूठा लगवा लेते है। देखा जाए तो बाप भी गृहस्थी रूपी बगीचे का माली ही होता है। अधिकारियों को तीन हजार किलोमीटर तक की सपरिवार यात्रा करने का किराया प्रति दो वर्ष मे मिलता है। अधिकारी इतने गणेश भक्त हैं, कि जिस प्रकार गणेशजी ने मां पार्वती की परिक्रमा करके कार्तिकेय जी को ब्रह्माण्ड की यात्रा में पराजित कर

दिया था, उसी प्रकार पांच दिन की छुट्टी लेकर अधिकारीगण अपने माता-पिता की फोटो के आगे चक्कर लगाते रहते हैं, और सातवें दिन आकर यात्रा किराए के बिल जमा कर देते हैं, जिस पर ऑडिट वाले अपना लाल निशान लगाने को उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं।

कबाड़े का सामान बेचने में इतनी अधिक ईमानदारी बरती जाती है कि साल में दो-चार बार तो ईमानदारी को भी ज्ञापन देना पड जाता है कि अगर इतनी अधिक ईमानदारी बरतने लगे तो मैं कहां रहूंगी। कभी टूटी-फूटी ट्यूब लाइटों और बल्बो के साथ-साथ सही-साबुत माल भी उठ जाता है, तो कोई टोकने वाला नहीं। लकड़ी के डिब्बों को लकड़ी के भाव से बेच दिया जाता है जिसमें बियरिंग तक निकल जाते हैं। फैक्ट्री आयल के खाली ड्रम कबाडे में बेचती है, जो कर्मचारी लेने का उत्सुक होता है, उसे कबाड़ी से पहले प्राथमिकता दी जाती है। इसलिए इच्छुक कर्मचारी ड्रम के खाली होने से पहले ही उसे खाली कर देते हैं। उसमें भरे हुए आयल या केमीकल को गटर माता की कोख में सौंप देते हैं, और ड्रम प्राप्त कर लेते हैं।

हे सज्जनों ! (और देवियो भी) अधिक क्या लिखा जाए विक्रमादित्य के जीवन में जो स्थिति उज्जैन की थी, वह यदि आप जानना चाहें तो इस फैक्ट्री के द्वारे अवश्य आयें और अपने इष्ट मित्रों को भी लाएं। □

जल्दी निबटना

बिरले व्यक्ति ही अपना कार्य समय पर कर पाते हैं, अधिकांश व्यक्ति लेटलतीफ होते हैं। लेटलतीफ होना एक लानत है, और पंक्चुअल होना एक क्रेडिट है, जो सभी को नही मिलती।...लेकिन उन्हे क्या कहें, जो समय से पहले, बल्कि बहुत पहले ही काम निबटा देते हैं।

एक महाशय हैं, जो समय से 10-15 मिनिट पहले हमारे दफ्तर मे पहुंचते हैं। हमें दस साल में दस बार भी यह अवसर नही मिल सका है। किसी तरह भाग-दौड़कर दफ्तर पहुंच जाते हैं, और नौकरी बची हुई है। शुरू में हम उन्हें प्रशंसा की दृष्टि से देखते थे। उनका अनुसरण करने की भी कोशिश की, परन्तु सफल नही हो सके। और यह साहब दादा कोंडके की तरह कभी असफल नहीं हुए। साल बीता, दो साल बीते। आखिर उनसे पूछा, तो उन्होने कुछ बताया नही पर इतना जरूर कहा, 'इसके पीछे मेरी अर्धांगिनी का हाथ है।' हम यह फारसी समझ नही सके। पर हमारे लेट आने पर यदा-कदा जब हमारे अफसर हमें झाड़ने-फूंकने लगे, तो हमने उनसे सन्धि करने के लिए प्रार्थना की। इस पर उन्होने अपनी असमर्थता प्रकट कर
मैं दफ्तर नही आऊं, तो कहां जाऊं?'

'यानि ?'

'मैं तो सुबह-सुबह सोना चाहता हूं, पर पत्नी जगा
जगा देती है, तो फिर चाय का प्याला और नहाने के
तैयार। नहा के निबटो, नाश्ता तैयार। नाश्ता
टिफिन का डिब्बा ... करूं ?'

तब हमारी ... दफ्तर

समझ में आ गया। यह और बात है कि हम अपने अफसर को नहीं समझा सके।

मेरे एक मित्र ने सबसे पहले स्कूटर खरीदा। हम लोग अभी सहकारी समिति से ऋण प्राप्त करने के लिए सचिव को मक्खन ही लगाते फिर रहे थे। इधर साल-डेढ़ साल में उनका स्कूटर मिस्त्री को प्यारा हो गया। पता चला कि स्कूटर खरीदने में उनकी पत्नी का हाथ था, और···उसे मिस्त्री की दुकान तक पहुंचाने में उनके साले साहब का।

हमने तीसवें साल में पड़ जाने पर शादी की। हमारे साथी ने उसी वर्ष नसबन्दी ऑपरेशन करवा लिया। हमारी शादी का हमें जो उत्साह था वह एकदम ठण्डा पड़ता नजर आया। हम तो अव्वल दर्जे के फिसड्डी रहे। हमने पूछा, 'भई ! ऐसी क्या जल्दी थी।'

'क्या करते ! अट्ठारह वर्ष की आयु में विवाह हुए, उन्नीसवें वर्ष में पिता बन गए। करते क्या, बस निबट गए।' जल्दी निबटना हरेक के बस की बात नहीं, या कहना चाहिए, हरेक के भाग्य की बात नहीं है। दुनिया भर के नेता अपनी-अपनी औकात का चुनाव लड़ने के लिए टिकट पाने के लिए चक्कर चलाते रहते हैं।

जनता पार्टी के छोटे-बड़े सभी नेताओं को बम्पर ड्रा खुलने से 1977 में न केवल टिकट मिला, बल्कि जीत भी गए। जीत गए तो सरकार बना ली---मगर आदत तो वही थी न जल्दी निबटने की, बस! 'जाना था हमसे दूर, बहाने बना लिए।' पहले चरण मे चरणजी रूठे, दूसरे में जार्ज फर्नांडिस, और लीजिए कर लिया राज। अब विपक्ष में बैठेंगे। इतने पर भी गनीमत थी, लेकिन जाने लोक सभा की सीटों के खटमल काटने लगे थे कि फिर दूसरे लोग भी पार्टी छोड गए और विपक्ष से सत्ता पक्ष और सत्ता पक्ष से वापस विपक्ष का नाटक इतनी जल्दी निबटा दिया।

राजनीति में यह हालत है तो खेलकूद में भी नक्शा इससे अलग नहीं। हमारे खिलाड़ियों और पहलवानों को भी जल्दी निबटने की

आदत है। सारे देश के खेल प्रेमी रेडियो पर कान लगाए (और अब टेलिविजन पर आखें लगाए भी) खेल समाचार जानने को उत्सुक रहते हैं। खेल को हम राष्ट्रीय सम्मान से जोड़ लेते हैं, मगर हमारे खिलाडी ! क्या हाकी और क्या क्रिकेट ! क्वार्टर फाइनल में और कभी-कभी लीग मे ही पसरी खा जाते हैं। अब चाहे खेल-प्रेमी उनके खेल से निराश होते रहें, काम उनका राष्ट्रीय हित में होता है। लाखों आदमी घंटों तक खेल की कमेंट्री में इतने श्रम घंटे गंवा दें, यह हमारे राष्ट्र प्रेमी खिलाड़ी को गंवारा नही, इसलिए वह राष्ट्र के हित में जल्दी ही अपनी छुट्टी करवा लेता है।

फिर भी यह एक कटु सत्य है कि जल्दी निबटने वालों पर लोगों का ध्यान नही जाता। शत्रुघन सिन्हा सैट पर देर से पहुंचते हैं, तो खबरो मे छाए रहते हैं। शशि कपूर समय पर पहुंच जाते हैं, तो भी शालीन कहे जाते हैं पर यदि कोई व्यक्ति (या अभिनेता) सेट पर शेड्यूल से पहले पहुच जाए तो लाईटमेन और फ्लोर मेन भी उसे घास नही डाले। शायद इस कारण से लोगों मे समय से पूर्व निबटने की मानसिकता विकसित नही होती है। कुछ अपवाद जरूर हैं, जो समय से पहले निबटने का कार्यक्रम चालू कर देते हैं। जैसे हमारे पड़ोसी नाथूलालजी। सुबह, शाम को गाजा और रात को दारू—बाकी समय मे जर्दे का पान लेते रहे और इस व्यसन का इतनी कठोरता से पालन किया कि 39 से 40 नही हो सके।

मैंने कुछ पहुंचे हुए लोगों से इस विषय में मालूमात की तो उन्होंने बताया कि नियत समय से पहले निबटने वाले लोगों के स्वभाव मे कुछ अधीरता रहती है। कुछ पिछली भूल को सुधारने के चक्कर मे यह काम करते हैं। कुछ को परिस्थितियों की विवशता से जल्दी निबटना पड़ता है। गोकुल चन्द जी सुबह जल्दी उठकर घूमने जाते हैं, पर घर से निकलते ही जो मिल जाता है, उसी को कहते हैं, 'आज तो कुछ काम है, इसलिए जल्दी ही लौट आऊंगा।' यही वचन पत्नी से कहते हैं फिर···फिर रास्ते में कोई दूध वाला या मेहतर

राम-राम करता है, उससे भी कहते हैं, 'आज काम है, थोड़ा जल्दी ही लौटूगा।' घर आकर नाश्ता भी थोड़ा जल्दी मंगवा लेते हैं, फिर अखबार भी पढ़ने के लिए ले बैठते हैं। दफ्तर तो खैर-थोड़ा जल्दी ही जाते हैं। खाना-पीना, सोना सब थोड़ी जल्दी की घोषणा के साथ करते हैं। भूल सुधारने वाले वे पहले व्यक्ति हैं जो पहले अव्वल दर्जे के लेट-लतीफ रह चुके हैं, पर अब प्रायश्चित स्वरूप थोड़ा जल्दी करते हैं। जैसे रामकरणजी कल 6.00 के बजाए 7.00 बजे उठे थे, तो आज 5.00 बजे उठेंगे। या सुबह का खाना 12.00 बजे के बजाए 2.00 बजे खाया था तो रात को खाना 8.00 के बजाए 6.00 बजे खाने की जिद्द करने लगते हैं। तीसरे परिस्थितिवश जल्दी निबटने लगते है। हमारे मौसाजी थानेदार रह चुके हैं। अपने बच्चों को वे सुबह साढे चार बजे उठा देते हैं। मैं एक बार यह नक्शा अपनी आंखों से देख चुका था। एक बार मुझे उनके घर रात को सोना पड़ा। सुबह आंख खुली तो देखा वह अपने लड़के को झिझोड़ रहे थे। अरे कैलाश! उठ। सोता रहेगा क्या? कैलाश आंख मलते-मलते उठा। मैं भी उठ गया। कैलाश ने ब्रश किया, मैंने भी ब्रश किया। ठंड के मारे बुरा हाल था, पर मौसाजी का डर भी था। वह नहाकर बाथरूम से लौटा, और मैं अन्दर घुसा। गर्ज यह कि वह आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे। उसने कपड़े पहनने शुरू किये और मैं बाथरूम से निकला। कैलाश ने मोजे पहनकर कहा, 'मुझे तो भोपाल वाली गाड़ी पकड़नी है, आप क्या रोज इतनी जल्दी निबट जाते हैं?'

मैं अन्दर ही अन्दर अपने आपको कोस रहा था। □

बात यूं चलती है

बहुत पहले पं० दुर्गाशंकरजी ने बताया था कि एक बार दिल्ली के चांदनी चौक मे दो साण्ड आपस में सीग से सीग उलझाकर झगड़ रहे थे, लोगों मे खलबली मच गई। उधर से महर्षि दयानन्द सरस्वती का निकलना हुआ। हितैषियों ने स्वामीजी को रुक जाने को कहा, परन्तु आप अपनी मन्थर गति से बढ़ते रहे। दोनों साण्डो को एक-एक हाथ में सीग पकड़कर के दूर फेंक दिया और चुपचाप निकल गए। यह जब पहली बार सुना तो मैं हृदय के अंतरतल से ब्रह्मचर्य की महिमा के प्रति और पं० दुर्गाशंकर के प्रति भी आस्था से प्रभावित हुआ। परन्तु इसी प्रकरण को दुबारा एक ट्रेन यात्रा मे सुना। इस बार स्थान दिल्ली का चादनी चौक न होकर बनारस था, और प्रसंग के नायक महर्षि दयानन्द न होकर स्वामी विवेकानन्द थे। बाल ब्रह्मचारी तो खैर स्वामीजी भी थे। इसलिए ब्रह्मचर्य के प्रति आस्था तो अडिग बनी रही परन्तु शंका हुई कि वस्तुतः साण्डों को अपनी भुजाओ के बल से पन्द्रह हाथ इधर और पन्द्रह हाथ उधर फेंकने वाला महापुरुष था कौन। किताबो मे कही पढ़ा नही था। बात आई गई हो गई। एक दिन दफ्तर मे ही एक सद्य-नियुक्त लिपिक ने उपरोक्त कथा को दोहराया। पर इस बार यह घटना महाराणा प्रताप की किशोर अवस्था में घटित हुई थी। यह सुनकर स्मृति कोष मे बड़ी उथल-पुथल हुई। किसे सही मानें और किसे गलत। किसी से पूछते भी नही बनता था। पर जब गत माह उज्जैन गया तो वहां पता लगा कि विनोद मिल में एक पहलवान नरपतसिंह काम करता था। मिल के मालिक झालरापाटन का मेला देखने गये हुये थे। मेले में वही दो साण्ड और⋯और भगदड़ का मचना⋯इतने मे वीर नरपत का उधर से

आता···और ! सुनकर धन्य हो गया। अहा ! कैसा मेरा देश है, एक ही घटना की आवृति कितने वीरों के जीवन में हुई और लोग कितनी आस्था से इनको सुनाते हैं। परन्तु धन्य होना ही पर्याप्त नही होता न ! इसलिए हमारे पड़ौसी श्री आर. के. भट्ट के सामने जिज्ञासु होकर यह प्रसंग प्रकाश डालने के लिए रखा। इन साहब की मीमांसा शैली परम शालीन है और व्याख्या करने की क्षमता अद्भुत है। उन्होंने कहा, 'यह घटना वस्तुतः किसके जीवन मे हुई, यह तो विवादास्पद है, परन्तु जिस प्रकार से घटित हुई (होगी) वह यूं है कि साण्ड संज्ञा प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुई है, व्यस्त बाजार मे वस्तुतः दो महाबली दुर्दम्य व्यक्ति लड़ने-मरने को उतारू हुए थे। लोगों में भय व्याप्त था। स्वामीजी या महर्षि उधर से गुज़रे। उन्होंने अपनी नैतिक शक्ति का उपयोग करते हुए मधुर वचनो से उनको न लड़ने के लिए प्रेरित किया और वे दोनों हिंसा को उतारू व्यक्ति अपने-अपने रास्तों पर जो संभवतः पन्द्रह + पन्द्रह = तीस हाथ के अन्तर पर थे, चले गए।

इस बार मैं और भी भाव-विह्वल हुआ। सोचा, हमारे यहा किसी भी एक प्रभावोत्पक घटना को लोग कितने विभिन्न रूपों में कह जाते हैं। किस-किस से जोड़ देते हैं। ऐसे में यदि भट्ट साहब जैसे प्रकाश-दीप न हों तो आए दिन जिज्ञासुओं के जहाज़ टकरा-टकरा कर चूर-चूर होते रहें।

इसी तरह की एक और घटना है, जो मैंने कोटा के बारे में सुनी थी। आज से बीस वर्ष पूर्व। बृज टाकीज से एक सज्जन अपनी पत्नि और बहिन के साथ फिल्म देख कर लौट रहे थे। आखिरी शो। बग़ीचे में सड़क पर अचानक चार युवकों ने उनका मार्ग रोक लिया, उनके मुंह ढके हुए थे। उन्होंने कहा, 'इन दोनो में से किसी एक को छोड़ जाइये। पुलिस को बताने का दुष्परिणाम होगा।' कल इसी स्थान पर हम इन्हें छोड़ देंगे। अपनी इज्जत और जान बचाने की विवशता मे चुपचाप अपनी पत्नि को छोड़कर चले गये। और···। कथाकार या वाचक का आशय हमें यह समझाना था कि कोटा मे जान और माल की रक्षा

करना कितना दुष्कर है। हमने भी गांठ बांध ली। इस बात को फिर कई के मुख से सुना। प्रायः वर्ष मे एक दो बार तो सुनता ही रहा। हर बार घटना पिछले दिनों में हुई बताई जाती थी। कोटा से फिर जयपुर जाना हुआ। वहां भी यही बात सुनने मे आई। सुनकर बुद्धि कुलबुलाई पर खैर···। लेकिन एक बार जब इन्दौर के बारे मे भी यही सुनना पड़ा, तो सोचना पडा कि यह बातें कैसे फैलती हैं। लोग सुनने के बाद उन्हें घुमा-फिरा कर पात्र और स्थान बदलकर अपने शब्दो में क्यो सुनाते हैं। इमरजैन्सी के दिनों एक कांग्रेसी ने आपात् स्थिति की आवश्यकता पर जोर देते हुए कई भयंकर स्थितियो का उल्लेख करते हुए यह बात भी कही थी। और हाल ही में यही बात एक सार्वजनिक सभा में भाजपा अध्यक्ष अटल बिहारी बाजपेयी जी ने भी कही। और बडे प्रभावोत्पादक ढंग से कही जिस पर मंच के सामने बैठे श्रोताओं (कार्यकर्ताओं) ने शेम-शेम के नारे भी लगाये। इच्छा तो मेरी भी हुई पर इतना पुराना मसाला लोगों के गले उतर जाता है, यह सोचकर मसाले के महत्व को समझते हुए चुप रह गया। दफ्तर में चर्चा हुई, एक साथी ने (उन्हीं भट्ट साहब ने) कहा, 'वस्तुतः ऐसा नही है। दिल्ली मे कानून व्यवस्था बहुत पुख्ता है। यह सब सरकार को बदनाम करने की बातें हैं। हुआ कुछ और ही है। फिल्म देखकर एक सज्जन अपनी पत्नी (अधेड़) और पुत्री (युवा) के साथ लौट रहे थे। कार की स्पीड बहुत तेज थी। इस पर दो युवकों ने जो पिछली कार में थे, उन्हें ओवरटेक किया और उनकी कार रुकवाई और उन्हें तेज कार न चलाने की सद्भावना पूर्ण सलाह दी। सज्जन बहुत प्रभावित हुए। वे दुबारा कार चलाने लगे, उनकी कार स्टार्ट नहीं हुई। इस पर उन युवकों ने कहा कि आप कार स्टार्ट करने की कोशिश करें, तब तक हम इन दोनों में से किसी एक को सोफ्टी खिलाने ले जाते हैं, क्योंकि मां सोफ्टी को अधिक पसन्द करती थी, इसलिए स्वेच्छा से चली गई।'

मेरी आंखों से प्रेमाश्रु बह निकले।

कितना सुन्दर और शालीन चित्रण है। सच ही तो है। जाकी रही

भावना जैसी, प्रभू मूरत देखी तिन वैसी। अनंत हरि की अनत कथाओं को साधु बहुविधि से कहते हैं, यह तो मुझ जैसा कुमति भी जानता है, परन्तु कई कथाएं ऐसी हैं, जिनका हरि क्या हीरो से भी सम्बन्ध नही है। वे क्यो बहुविधि कही जाती हैं। और चलो मान लिया कि कही जाती हैं, हमें क्या, पर जब सुनना पड़ता है, और जब बार-बार सुनना पड़ता है, तो कष्ट होता है।

एक कथा और है, एक आदमी कलकत्ता गया, उसने सुन रखा था कि वहां जेबकतरे बहुत हैं। पर वह वहां चार दिन रहा, उसकी जेब से दियासलाई भी पार नही हुई तो वह हस पड़ा, और लौटते समय ट्रेन में शेखी बघारने लगा, इस पर उसके पास बैठे सज्जन ने कहा, 'महाशय! इतराने की जरूरत नही है। आपको, मैंने अपने नाम बेचान करवाया है। और मेरा नम्बर आठवां है। मैंने आपकी जेब साफ करने के चार सौ रुपये दिये हैं। वो मैं ब्याज सहित आपसे वसूल कर चुका हूं। जरा अपना बक्सा टटोलिये।' बक्सा नदारद था। इस हरि कथा को अपनी आयु में अब तक मैं कम से कम साठ बार सुन चुका हूं। कभी कथा का पात्र कलकत्ता जाता है, कभी कानपुर। कभी कथाकार का वह मामा होता है, कभी मौसा। और कभी-कभी आपबीती सुनाने वाले वक्ता भी सामने आ जाते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि कहने वाला या तो सुनने वाले को निरा मूर्ख समझता है या वह स्वयं मूर्ख होता है, पर नही जानता या मानता। या कुछ को कुछ नकद कहने का रोग भी होता है। तो सुनी-सुनाई बात को अपने ऊपर या अपने चाचा, ताऊ पर ढालकर भी कह जाता है। कुछ लोग इसको बड़े ध्यान से सुनते हैं। गहरे में चिंतन करते हैं, और फिर उसकी व्याख्या करते हैं। मैं जब तब व्याख्या की आवश्यकता होती है, भट्ट साहब के पास जाता हूं। उनकी व्याख्या शालीन और उदारवादी होती है। इस घटना पर भी मैंने उनसे श्वेतपत्र जारी करने का आग्रह किया तो उन्होंने अपने साथ घटित हुई एक दास्तान सुना दी। उनके शब्दों में :—

मैंने भी आगरा के लिए ऐसा सुन रखा था। मैं बी॰ ए॰ करके भी

बेकार घूम रहा था। सोचा, क्यों न आगरा में कोशिश की जाए। नौकरी मिली नहीं, सोचा, क्यों न इस चर्चित व्यवसाय में पौरुष-परीक्षा की जाए। एक आसामी दिखा, उसने कोटा का टिकट लिया। तो सौ का नोट निकाला। कुली को पैसे दिये तो बीस का नोट निकाला। चाय पी तो दस का नोट निकाला। मतलब यह कि मुझे पक्का हो गया कि यह अच्छा-खासा मुर्गा था। उसकी जेब तो मैं साफ कर नहीं सकता था। दलाली करना आसान था। उसके आस-पास घूमते हुए मैंने ध्यान से देखा, एक व्यक्ति उसके आगे-पीछे घूम रहा था। मुझे समझने मे देर नहीं लगी कि यह भी उसी की तलाश में है। मैंने उस सज्जन से कहा, 'यह मारवाड़ी मेरा शिकार है, यदि तुम चाहते हो तो ले लो, मेरा रेट पचास रुपये मुझे दे दो, तुम फिर भी बचा लोगे।' सुनकर वह आपे से बाहर हो गया। उसने कहा, 'क्या आप मुझे जेब-कतरा समझते हैं, या आप भी जेब-कतरे हैं, जनाब मैं तो सम्पादक हूं। विडम्बना है कि मेरा पत्र आजकल बन्द है, पर आपने कैसे मुझे इतना गिरा हुआ समझ लिया? क्या आपने कवि 'दारूण' का नाम नहीं सुना?' कहते हुये वह व्यक्ति फूट-फूटकर रो दिया। □

भूमिगत

'वो' फिर भूमिगत हो गए हैं। उनका मकान-मालिक उनके बारे में कोई भी सन्तोषप्रद जानकारी नही दे सकता। या कहें कि वह स्वयं उन्हें ढूंढने के चक्कर में हैं। ऐसा वे प्रायः करते हैं। जब भी उनका डालर कमज़ोर होता है, वे भूमिगत हो जाते हैं। आजकल उन्होंने अपने एक विधुर मित्र के घर डेरा डाल रखा है। वे उसे ज्ञान और वैराग्य की चर्चा से मुग्ध किये रहते हैं। उन्ही के खाते में खाना खाते है और आगामी योजना बनाते हैं।

अखबार वाला नियमित रूप से उनके कमरे में अखबार डालता जाता था कि उसके भोलेपन पर दया करके मकान मालिक ने कहा, 'क्यों अपना धन्धा चौपट करते हो? यह महाशय तो गायब हैं।' अखबार वाला दूसरी नस्ल का था। वह पैसे लेना जानता था, उसने मकान मालिक की बात का कोई उत्तर नही दिया और अपना काम करके चला गया।

दूध वाला भी इक्का-दुक्का इधर का चक्कर लगा लेता है, पर निराश होकर चला जाता है। पान वाला भी इसी वियोग में है, और परचूनी भी। मुझे उनके भूमिगत होने से विशेष परेशानी नही, पर मेरी जर्सी वह ले गये हैं। इसलिए थोड़ी सी अड़चन है। वैसे आजकल सर्दी नहीं है, पर इस बार उनकी भूमिगत होने की अवधि यदि बढ़ गई तो मुझे नई जर्सी लेनी पड़ जायेगी।

प्रायः वे जुलाई-अगस्त में भूमिगत होते हैं। जब दो-दो, तीन-तीन महीने का बिल ड्यू हो जाता है, तब वे अपने साथियों से आर्थिक सहायता का अनुरोध करते हैं। हाथ-पाव मारने से कही कुछ हाथ भी लग जा।

है, उससे दो-चार दिन गुजर जाते हैं। लेकिन इससे क्या होता है ! अंततः वे भूमिगत हो जाते हैं।

भूमिगत होना अपने आप में कितना रोमांचकारी है, इसकी तो मैं कल्पना ही कर सकता हू, परन्तु भूमिगत के साथ रहने के अनुभव मुझे अवश्य हुए हैं, और मैं समझता हूं कि मुझ जैसे फिसड्डी व्यक्ति के लिये इतना ही काफी है।

एक बार मैं कैंण्टिन का खाना खा रहा था, मेरे सामने बैठे एक साथी ने पूछा, 'क्यों भाभीजी आजकल नही हैं ?' मैंने कहा, 'नही, यही है। क्यो ?'

'वैसे ही', आप तो घर का खाना लाते हैं ना इसलिए। बात यही समाप्त हो गई, पर मुझे पता नही था कि मेरी यह छोटी सी मुलाकात मेरे लिए एक महत्वपूर्ण घटना बन जायेगी। दुबारा फिर उन्ही महाशय ने मुझे केण्टिन का खाना खाते देखा, तो उन्होने इशारे से ही पूछा, 'आज कैसे !'

मैंने कहा, 'मिसेज अपने घर गई हुई हैं।' सुनते ही उसके चेहरे पर चमक आ गई, और उन्होंने मुझसे अंतरंगता पूर्ण वातावरण मे विविध विषयो पर कितनी ही बातें कर डाली। गृहस्थी के झंझट मे लुप्त (या सुप्त) हो गए कितने ही रुझान उन्होने ताजा करा दिये और मेरी वो हालत कर दी कि शाम को उन्हें मैं अपने घर ले आया।

चाय बनी, छत पर जाकर पी, बातें की, और बातें भी ऐसी जमी कि कब शाम ढल कर रात हो गई, पता ही न चला। फिर भी उन्हें जाने की नही सूझी। और मेरी मति को तो दारुण दुख देने के पहले विधाता हर चुका था, सो मैं *उन्हे होटल ले गया*, हमने *साथ-साथ खाना* खाया। फिर थोड़ा टहलने गये। उनका घर उसी दिशा में पड़ता था। चौराहे से मैं जब लौटने को हुआ तो वे बोले, 'मैं भी चलता हूं।' उनके प्रस्ताव से मुझे अति प्रसन्नता हुई, और मैं उन्हें अपने कमरे मे ले आया। दूसरे दिन वह स्वयं मेरे घर आ गए, और मेरी दिनचर्या मे ऐसे घुल गए कि मैं सम्मोहित सा उन्हें देखता भर रहा, उनके सानिध्य

पुलकित होता रहा । तीसरे दिन जब वह फिर आये तो उन्होंने कह ही दिया कि जब तक भाभीजी आएं, मैं यही आ जाया करूगा । लेकिन मेरी समझ में नही आया कि वह ऐसा क्यों कह रहे हैं । धीरे-धीरे जब हमारी प्रीती बढ़ी, तब उन्होंने बताया कि उनके पीछे कितने लेनदार पड़े हुए हैं, इसलिए वह भूमिगत हो गए हैं ।

क्रांतिकारियों के बारे में कहा जाता है कि जब तक उनका लक्ष्य पूरा नही हो जाता, तब तक वे सत्ता के सामने समर्पण नही करते और भूमिगत हो जाते हैं । इसी प्रकार की क्रांति का अरमान लेकर हमारे मौहल्ले का एक युवक राधेश्याम अपनी प्रेमिका को पत्र लिख बैठा । प्रेमिका भी मेट्रिक की परीक्षा दिए फुर्सत मे बैठी थी । लिहाजा हाथो-हाथ उत्तर आ गया । बस फिर क्या था एक पत्र इधर से, एक पत्र उधर से आता-जाता रहा । इसकी खबर पहले सप्ताह मे ही प्रेमिका के भाई ध्यानसिंह को लग गई । उसने बहन को जरा सा डांटा और राधेश्याम की तबियत ठीक करने के लिए मौका ढूढने लगा । प्रेमी राधेश्याम को जब पता चला कि सदियों पुराना प्यार का दुश्मन प्रेमिका का भाई उसके प्यार को लूटना चाहता है, वह भूमिगत हो गया । (रातो-रात अपने चचेरे भाई के पास कोटा चला गया) ध्यानसिंह आस्तीनें चढ़ाए प्रेमी राधेश्याम को ढूंढता रहा, लेकिन राधेश्याम हाथ न आया । वह भूमिगत हो चुका था ।

प्रेमी और ऋणी के अलावा कुछ और व्यक्ति भी हैं, जो भूमिगत हो जाते हैं, पर उनका पलायन किसी गहन (गम्भीर) उद्देश्य (या कारण) से न होकर कुछ निकृष्ट दर्जे का होता है । जैसे दशहरे के मेले के दिनो मे कोटा के लोग आस-पास के गावों से आने-जाने वाले लोगो की मेह-मानदारी से बचने के लिए भी घर से फूट लेते हैं । चंदा मांगने वालों के मारे भी कुछ लोगों को भूमिगत होना पड़ जाता है । नेताजी, मंत्री या एम०एल०ए० जी भी चुनाव जीतने के बाद प्रायः भूमिगत रहते हैं, और पक्के अवसर वादियों की तरह कभी कही उद्घाटन, शिलान्यास के अवसर पर ही दर्शन देते हैं । भूमिगत होना अपने आपको सुरक्षित रख

लक्ष्य की प्राप्ति होने के लिए प्रयत्नशील रहने का एक मात्र उपाय है नेता को चुनाव जीतने के बाद मंत्री पद पाने के जोड़-तोड़ चलाने के लिए मतदाताओं से अपने आपको बचाने के लिए भूमिगत होना पड़ता है कर्जदार को महाजन से बचने के लिए यही विकल्प चुनना पड़ता है। जो नालायक बेटे शहर में नौकरी करने लगते हैं, वे कस्बे से आ धमकने वाले सगे बाप से बचने के लिए भूमिगत हो जाते हैं, क्योंकि वेतन में उनके अपने खर्चे पूरे नहीं होते, बाप को क्या दें।

इसी प्रकार के निकृष्ट और उत्कृष्ट लक्ष्यों के लिए लोग भूमिगत होते रहते हैं, लेकिन हाल ही मे भूमिगत होने का रिकार्ड झालावाड के एक बिजली का सामान बेचने वाले ने तोड़ा है। जिसे कवियो के अत्याचार के कारण भूमिगत होना पड़ा। आचार्य महावीर प्रसाद शुक्ल जन्म शताब्दी के अवसर पर कवि सम्मेलन हुआ। बिजली-माइक वाला भी साहित्यिक रुचि का था, इसलिए भवानी नाट्यशाला में हो रहे कवि सम्मेलन में जा पहुंचा। हाल खचाखच भरा हुआ था। मच पर उद्घोषक महोदय ने सूचना दी, 'यह कवि सम्मेलन एक अभूतपूर्व कवि सम्मेलन है, जिसमें एक सौ अस्सी कवि भाग ले रहे हैं।' तब उसे पता चला कि सामने जो बैठे थे, सबके सब मा सरस्वती के पुत्र कवि थे। श्रोता उसके अलावा कोई नही था। कवि सम्मेलन सारी रात चला, और यह विश्व का एकमात्र कवि-सम्मेलन था, जिसमे कवि श्रोताओं मे बैठे थे, और एक मात्र श्रोता को मंच पर बैठे रहना पड़ा। किसी तरह कवि सम्मेलन का समापन हुआ, तब उद्घोषक जी को पता चला कि माइक वाला वहा नहीं था। खोजबीन हुई, पता नही चला। आज तक नही चला। चलेगा भी नहीं। वह एक पत्र छोड़ गया, जिसमें लिखा था कि जब तक इन एक सौ अस्सी में से एक भी इस दुनिया में है, मैं इसी तरह फरार (भूमिगत) रहूंगा। □

दया दिखावा है

कुछ व्यक्ति बड़े दयालु होते हैं, उनमें यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि सबसे बड़ा दयालु कौन है। नगर के बीचों-बीच गढ़ में सुबह सुबह ऐसे दयालु प्रकट होते हैं। यहां पर कबूतरों को डालने के लिए कोई कटोरे मे, कोई थैली मे, कोई रूमाल में ज्वार लेकर स्त्री-पुरुष आते हैं। कबूतरो को ज्वार डालने के बाद कुछ देर खड़े रहकर काम-धंधे वाले घर लौट जाते हैं, और ठलुए चबूतरे पर बैठ जाते हैं। फिर कुछ देर बाद सेठजी अटारी वाले पीपे को कंधे पर रख कर आते है, और ज्वार डालने लगते हैं। इस पीपे में ज्वार दस-पांच किलो नहीं होती, पर उनका अंदाज यही होता है। जाते समय भी वे पीपे को कंधे पर उसी तरह रख ले जाते हैं। इसका रहस्य बहुत कम को पता है।

उनके दयालु होने की पराकाष्ठा यहां तक है कि उन्होंने कबूतरो के नाम तक रख दिये हैं। ज्वार डालने पर जब कबूतर पंख फड़फड़ा कर उनके कंधे पर बैठ जाता है तो वह बाद में उन ठलुओं को बखान करते हैं, यह 'जुगलियां' मुझे बहुत चाहता है। कभी 'द्वारकिया' उन्हें नजर नहीं आता और वे कुछ चिंतित से हो जाते हैं। कुछ लोग अटारी वाले सेठजी की इन अदाओं को कोरी नक्शेबाजी कहते हैं। लेकिन दयालु लोगों की गिनती में उनका नाम आज भी है। इनकी टक्कर के एक दयालु और हैं, रामविलासजी, यह साहब गर्मी हो या बरसात रोज सुबह खण्ड्या के तालाब पर जाकर मछलियों को आटे की गोलियां डालते हैं। इसमें उन्होंने कभी नागा नहीं की। सबसे बड़ा पुण्य वे मछलियों को आटे की गोली डालनी ही मानते हैं। इनकी सेवा कठोर है, क्योंकि तालाब नगर से दो किलोमीटर दूर है और गढ़ में कबूतर डालने वाले तो अटारी वाले

सेठजी के प्रतिद्वन्दी और भी है, पर मछलियो को आटे की गोलियां डालने वाले दयालु एकमात्र रामविलासजी ही हैं। मगर निन्दक हर कही मौजूद है, जो लोग गल्ले के व्यापारी, अटारी वाले के लिए कहते हैं कि वह तो ज्वार का कचरा इकट्ठा करके सुवह-सुवह डालने आ जाता है, वहीं जनता फ्लोर मिल रामविलास जी के लिए कह देते हैं कि हर ग्राहक के पीपे से 200-400 ग्राम आटा मारकर अगर दस-बीस गोलियां मछलियों को डाल भी दी, तो क्या हुआ।

हमारा भाई भेरू लाल इन सब बातो को सुनता है, पर उसके मन में सेठजी और विलास जी दोनो के प्रति आस्था और आदर का भाव बना हुआ है। उसके लिए दयावान व्यक्ति ईश्वर का रूप है। और इसी लिए कमल किशोरजी भाई साहब साक्षात देवता हैं। भेरू लाल बिजली बोर्ड में काम करता है। मीटर रीडर है। हर महीने के दूसरे और तीसरे सप्ताह में उसका काम शुरू होता है, और बाकी पहले और चौथे सप्ताह वह फुर्सत मे रहता है। मीटर रीडर का काम बहुत टेढा है। सबसे पहले वकील साहब की रीडिंग ली, तो उनका बिल 86/- रुपये आ गया। वकील साहब के खाते मे बिजली चार्ज 18/- रुपये से ज्यादा कभी नही आया। घर मे पंखा नही था, तब भी 18/- रुपये बिल आता था। पंखा आया, कूलर आया। वकालत अधिक चलने लगी तो टी०वी० भी आ गया, मगर बिल 18 से 19 नही हुआ। इस बार 86/- रुपये का बिल आया तो वे सीधे कमल भैया के पास गए और कमल भैया ने भेरू लाल को पहला पाठ पढ़ाया। तबसे भाई भेरू ने वही रीडिंग ली, जो कमल भैया कहते हैं। चाहे वह बूढ़े पेन्शनर जगन्नाथ का घर हो या सोनी ज्वैलर्स का घर हो। कमल भैया ने उसे नौकरी दिलायी थी। होने को तो भेरू लाल का पिता भी बिजली बोर्ड का नौकर था, पर उनके रिटायर्ड होने पर भेरू लाल को नौकरी मिलने मे बहुत अड़चनें आयी थी, जिन्हें कमल भैया ने दूर किया था। तब से ही कमल भैया उसके मार्गदर्शक बन गए थे।

इन दिनों भेरू लाल को कमल भैया से एक काम और आ गया था।

उसे अपना भाई भी बिजली बोर्ड में लगवाना था। कमल भैया का आश्वासन पाने के लिए भेरू ने सारा ज़ोर लगा रखा था। दफ्तर जाने के पहले कमल जी के घर जाना। दफ्तर से आने के बाद उनके घर जाना। कोई बाज़ार या घर का काम करना हो तो करना, न करना हो तो बच्चों को खिलाना व खुश करना। बस एक बार भैया जी का आश्वासन मिल जाए तो नौकरी पक्की। किस्मत की बात अप्रैल-मई में वाटर वर्कस की सप्लाई फैल होने लगी। पहले दो बार तीन-तीन घंटे पानी आता था। फिर एक-एक घंटे हुआ, फिर एक बार रह गया और फिर कहीं आता कहीं शूं···शू···फूं···फूं करके नल बन्द रहने लगे। कमल जी के घर के नल को भी यह लत पड़ गई। फिर क्या था, भेरू लाल ने रस्सी, बाल्टी और मटका उठाया और कुएं की राह ली। बीस-बीस मटके पानी भरकर उसने कमल भैया का मन जीत लिया, पर अभी तक उन्होंने शाबाशी ही दी थी। रामा की नौकरी के लिए कुछ नहीं कहा था। एक दिन उसने रामा की उम्र के एक लड़के को देखा, पूछा तो पता लगा कि वह कमल भैया की मिसेज का भाई है। वह भी घर पर काम करता नज़र आता था। कभी सब्जी का थैला, कभी मिट्टी के तेल की पीपी। कुछ दिनों बाद दोनों मे बोलचाल हो गई तो उस लड़के विकास ने बताया कि मुझे बोर्ड मे नौकरी दिलाने के लिए कमल भैया कोशिश कर रहे हैं। इसलिए गांव से आया हूं। यह सुनकर भेरू लाल को कुछ अच्छा न लगा। उसे अपनी मेहनत अकारथ सी लगी। पर जाने क्यों उसके मन का विश्वास इतना गहरा था कि उसने सेवा मे कमी नहीं आने दी। कुछ दिन बाद वह लडका वहां नहीं दिखा। मालूम किया तो पता चला कि वह गांधी कॉलोनी मे कमल भैया के प्लॉट पर निर्माण कार्य चल रहा है, वहीं रहता-खाता है। उसने राहत की सांस ली और कमल भैया से अपने मन की बात कह डाली। उन्होंने सहजता से हंस कर कह दिया, 'अरे, क्या मुझे रामा की चिन्ता नहीं है ! इस बार की भर्ती में रामा की नौकरी पक्की।' भेरू को जैसे जयपुर वाले चेयरमेन साहब का आश्वासन मिल गया हो। वह नियमित सेवा करता रहा। एक दिन घर

गया तो कमल भैया के बच्चे बां···बां···कर रहे थे। दादी की नाक में दम आ गया। कुछ को भूख लगी थी···कुछ मम्मी···मम्मी करके रो रहे थे। पता चला कि कमल भैया की मिसेज को स्कूल में दो माह की टेम्परेरी सर्विस मिल गई है। इसलिये यह सब खटराग हो रहा है। इस मामले में भेरू भाई क्या करे। लेकिन कुछ ही दिन बाद वहां एक सुन्दर सी युवती दिखाई देने लगी। वह घर का काम-काज करती। बच्चों की देखभाल करती, और दिन-भर व्यस्त रहती। भेरू लाल को कुछ दिन बाद पता चला कि यह कमल भैया की दूर की रिश्ते की साली है, जिसके लिए योग्य वर ढूढने का काम भैया ने अपने हाथ में लिया है। भेरू लाल का कमल भैया के प्रति दिल मे उमडता कृतज्ञता का सागर हिलोरें लेने लगा। कुछ दिन बाद एक सज्जन आए, पता चला कि यह कमल भैया के रिश्ते के मामा-ससुर, अर्थात उस लड़की आभा के पिता थे।

जब भेरू लाल घर जाने को हुआ तो कमल भैया ने एक तरफ ले जाकर कहा, 'यार भेरू, अजीब मुसीबत में हूं। हमारी जाति में लडका लाखों मागता है, और ये लोग समझते नही। पीछे पड़े रहते है। इसलिए मैंने लिख दिया कि लड़का देख लिया है, लड़की भेज दो, लड़की आ गई, तो फिर चिट्ठयां आने लगी कि क्या रहा !···लडके को लड़की जमी या नही। लड़का है कहां···तुम एक काम करो, कल अपने रामा को ले आओ, समझा बुझा कर। बस थोड़ा टिपटॉप होकर आ जाए, बाद में मैं सम्भाल लूंगा। यह लड़का देखकर गांव चले जाएगे। फिर हम लिख देंगे कि लड़के को लड़की नही जमी। क्या···बस तुम यह काम कर दो।'

भेरू लाल के दिल मे कमल भैया के प्रति कृतज्ञता से उमड़ता सागर···ठिठक गया। उसके आगे मासूम युवती आभा, भोले-भाले विकास और अपने भाई रामा के चेहरे नाच रहे थे, जो बहुत-सी आशाएं लगाए कमल भैया के प्रलोभन मे आकर बिना मजदूरी की नौकरी कर रहे थे। ☐

(स) सौर ऊर्जा

सौर ऊर्जा या सोलर एनर्जी का अध्याय हमारी तकनीक में अभी नया ही जुड़ा है। वैज्ञानिक इस मामले में अभी सोकर ही उठे है। वह भी तब, जबकि कोयला की खदानें खलास होने लगीं या आणविक इकाईयां बिजली उत्पादन करते-करते जुम्मे के जुम्मे ठप्प होने लगी। अभी छोटे-मोटे उपकरणों पर प्रयोग हो रहे हैं या सेमीनार आयोजित किये जा रहे हैं।

दूसरी ओर चतुर सुजान दामाद जंवाई भाई हैं, जिन्होंने शताब्दी पूर्व ही ससुर ऊर्जा का महत्व समझ लिया था। और इस ऊर्जा का दोहन करने लगे। त्रेता और द्वापर में असुर शक्ति बढ़ने से भक्तगण त्राहि माम्···त्राहि माम् करते हुए क्षीर सागर की ओर भागने लगते थे। कलयुग मे मामला उलटा है। ससुर शक्ति बढने से दामाद गण गदगद हो जाते हैं। और धन्य···धन्य करते हुए कोई बिना पढ़े पास हो जाते हैं, किसी को नौकरी मिल जाती है, कोई प्रमोशन हथिया लेता है, तो किसी को बैंक से ऋण, या किसी को लाईसेन्स अथवा 'कोटा' मिल जाता है। गर्ज़ यह कि जितना दमदार ससुर होता है, उतनी ही ऊर्जा पैदा होती है।

इसी ससुर शक्ति को बंगला में 'शो शोर शक्ति' और सोलर एनर्जी को 'शालेर एनर्जी' कहते हैं। अप भ्रंष और सदोष उच्चारण की स्वाभाविक क्रिया में यह शब्द वैज्ञानिकों को मिला तो वे उल्टे कदम लौटे और शोलेर एनर्जी को सोलर एनर्जी और शोशोर एनर्जी का अर्थ सूर्य की शक्ति लगाकर भगवान भास्कर की ओर उन्मुख होने लगे।

इसे विडम्बना ही कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक अभी तक सौर ऊर्जा से पानी गर्म करने के संयंत्र ही चला रहे हैं। या कही-कही खिचड़ी पकाने के चूल्हे भी जल रहे हैं। लेकिन हमारे मित्र पी० के० मुखर्जी सोसोर ऊर्जा से घर मे टेपरिकार्ड और सड़क पर स्कूटर चला रहे है।

उनके ससौर साहब सेल-टैक्स अधिकारी हैं। एकमात्र कन्या के पति होने के कारण ससुर जी की सारी ऊर्जा उन्हें ही प्राप्त हो रही है। दूसरे बाबू सर्दी के कारण रजाई की चिन्ता मे हैं। ये आने वाली गर्मी के लिए रूम कण्डीशनर की तैयारी में हैं। प्रचुर मात्रा में ससुर ऊर्जा मिलने से दामाद दूरदर्शी होकर छः महीने आगे की सोचने लग जाता है।

वैसे देखा जाए तो ससौर ऊर्जा को प्राप्त करने में कोई दामाद पीछे नही हटता। जहां ससुर नही होता, वहां सोलर अर्थात साले की शक्ति से काम चल जाता है। अंग्रेजी में इसे (Solar Energy) कहते हैं। जिस घर में सौर या सोलर न हो, वहां का भगवान ही मालिक है। ससुर या साला या दोनों में से एक यूँ तो अपनी शक्ति से यथा सम्भव मंगनी मे, सगाई मे, शादी में और बाद में हिलनी-मिलनी के रूप में समय-समय पर कुछ न कुछ शक्ति दामाद को देते रहे हैं, पर अब के चन्द्रगुप्त रूपी दामाद अपने चाणक्य रूपी बाप/चाचा/भाई/दोस्त के मार्ग-दर्शन में ऐसे-ऐसे नुस्खे सीख गये हैं कि नौकरी प्रोमोशन तो क्या, नल-बिजली के बिल तक का भुगतान ससौर ऊर्जा से होने लगा है। कपडे सिलने और धुलने लगे हैं। वैज्ञानिक कहां लगते हैं। वे तो सौर ऊर्जा से अभी खिचडी पका रहे हैं, जब तक पकेगी, तब तक तो भाई राधेश्याम पुंवार भी ससौर ऊर्जा से महावीर नगर मे मकान बनवा चुका होगा।

हम तो नादान थे, जो हाथ मलते रह गए और पांच कन्याओ के एक निर्धन अध्यापक पिता को अपना ससौर बना बैठे पर जो अब शादी करने वाले हो, वे एक बारीक बात को ध्यान में रखें, कि आपका सौर (ससुर) या सोलर (साला) पैसे वाला एव दिल वाला दोनों हो, या फिर ऊंची पोस्ट पर विराजमान हो, साथ ही साथ यह भी देखें कि उस ऊर्जा केन्द्र से पॉवर सप्लाई अधिक स्थानों पर न हो रही हो, वर्ना आपके स्टेशन पर आते-आते वोल्टेज डाऊन हो जाएगा, और अगर पूरा अणु-शक्ति-केन्द्र ही फैल हो गया तो आप अंधेरी रात में दिया अपने ही हाथ मे लेकर माचिस ढूढते रहेंगे।

यानि आपके ससुर के आप यथासम्भव एकमात्र दामाद ही बनें। या अधिक से अधिक दो मे से एक, इससे ज्यादा में आपका हाल वही

होगा, जो रामेश्वरजी का हुआ । हम दो मित्र उनके घर गए तो पानी के गिलास के बाद खाली हाथ लिए भाभीजी आ गयीं और बैठ गयी। पहले नमकीन की प्लेट के साथ बर्फी की प्लेट तथा कॉफी आती थी।

हम इन्तजार करते रहे, तब रामेश्वरजी ने कहा, 'अब तो केवल पानी पीकर ही धैर्य धारण करो भैया, किसी पदार्थ की आशा मतकरो।'

कोई शर्मदार व्यक्ति होता तो जमीन मे गड़ जाता, पर मैं ठहरा भालावाड़ी—मेरा शर्म से क्या काम ? फिर भी जिज्ञासावश पूछा, 'आपकी दशा ऐसी क्योंकर हुई ? कृपया बताएं।' 'हमारे पापा हमारी तीसरी साली की शादी कर रहे है—इसी जून मे, इसलिए हम जरा टाइट चल रहे हैं।'

'···! लेकिन आपके पापा आपकी साली की शादी कर रहे हैं, ऐसा क्यों! क्या आपके ससुर जी मर गए!'

मेरा मित्र बीच में ही बोल पड़ा, इस पर भाभी जी ने तमक कर कहा, 'हाय! ये क्यों कहते हो भैया! मरे मेरा ससुर, इनका ससुर क्यों मरे।'

उस अज्ञानी को पता ही नही कि रामेश्वर जी अपने ससुर जी को ही पापा कहते हैं।

भाभीजी के वहां से उठ कर जाने के बाद ही रामेश्वरजी ने फरमाया कि असल में हमारे ससुर के चार कन्याए हैं। एक तो हम है। दूसरे दामाद जयपुर में हैं। हमारे पापा यानी ससौर ने दूसरी लडकी की शादी के बाद ही हमें सप्लाई में कटौती कर दी थी, पर फिर भी मामला ठीक था। फरवरी से वे सस्पेंड चल रहे हैं, जून में लड़की की शादी है इसलिए···! तनख्वाह में तो किराना, दूध और किराया ही निकलता है, स्टेण्डर्ड तो ससौर जी से मेन्टेन हो रहा था, वह प्लाण्ट ठप्प हो गया है। इसलिए सादा जीवन और उच्च विचार मे संतोष करना पड रहा है। उन्होंने लम्बी सांस खीची और कुछ देर मौन रह कर बोले, 'भैया, कोई शादी करे तो ऐसी जगह करे कि सारी ऊर्जा उसे ही मिले, वर्ना···हमारी तरह ये दिन भी देखने पड़ सकते हैं।' ☐

शहर दरोगा का विदाई समारोह

उस दिन शहर के एकमात्र छविग्रह मे चल रही फिल्म 'राम तेरी गंगा मैली' के टिकट लोगो को आसानी से मिल गए। ऐसा नही कि भीड न थी। खूब थी, मगर ब्लैक नही हुआ। लोगो ने खिडकी से टिकट ले लिए।

सर्राफे पान की दुकान पर बैठ कर सट्टे की पर्ची काटने वाला कोई खाईवाल नजर नही आया। सटोरिए परेशान थे। धर्मशाला का बाबू भी परेशान था। जिसके पास सप्लाई करने वाला दलाल गोपीचन्द चक्कर काटता था, और धर्मशाला मे ठहरने वाले किसी मुसाफिर को माल की दरकार होने पर बन्दोबस्त करता था। यह खबरें अखबार मे नही आई, मगर ऐसा हुआ था। उस दिन गुड के व्यापारी रामधनजी के बाडे में शहर दरोगा का विदाई-समारोह था, जिसमें बिना किसी शोर-शराबे और दिखावे के थानेदार जालिम सिह के अचानक तबादले के आदेश से सन्न रह गए, उनके मुरीद एकत्र हुए थे।

सबसे पहले बुजुर्ग व्यापारियो के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं सेठजी ने दरोगा को माला पहिनायी, और कहा, 'साथियों! दरोगा जी अभी दो साल भी पूरे नही कर पाए थे कि उनका ट्रान्सफर हो रहा है, हो सकता है, उन्होंने ही हममें कोई कमी देखी हो, और इसलिए टौंक जैसी जगह तबादला खुद करवाया हो या खुद किसी ने उनका पत्ता काटा हो, यह पुलिस के आन्तरिक मामले हैं। मैं तो केवल इतना कहूंगा कि दरोगा जी को पुलिस की नौकरी के बजाए व्यापार मन्त्री होना चाहिए। उनके यहां रहने से हमें कोई तकलीफ नही हुई। उन्होने हमें कितनी ही बार अन्दर जाने से बचाया। हमारे गोदाम मे छापे नही पड़ने दिए। कभी हमारे ट्रकों को नही रोका। ऐसा व्यापार को बढ़ाने वाला व्यक्ति आज हमारे

कस्बे से जा रहा है ।' इसके बाद युवक प्रतिनिधि उस्मान खां आए । 'सेठ जी ने ठीक ही फरमाया है, दरोगा जी ने व्यापार को खूब बढ़ावा दिया है । साथ ही जिनके पास व्यापार करने के लिए धन नहीं था, उन्हें बिना पूंजी और कम पूंजी के धन्धों में लगाया, मदद की और किसी लायक बनने में मदद की ।'

'मैं पहले मास्टरी ढूंढ रहा था, पर मुझे नौकरी नहीं मिली । मुझे दफा 109 में पकड कर जब दरोगा जी के सामने ले जाया गया तो उन्होने मुझे शरण दी और सट्टा सम्राट गोरधन के यहां नौकरी पर चिपका दिया और मैं सात रुपये रोज में पर्ची काटने लगा । यह शुरूआत थी, फिर उन्होने मुझे खुद खाइवल बनने की सलाह दी । और आज मेरे पास दो बेरोजगार (अशिक्षित) पर्चियां काट रहे हैं । और मैंने उन्हें भी रोजगार दे कर एक देश सेवा का छोटा सा काम किया है ।' फिर आए रमेश बच्चू । रमेश बच्चू का नाम शहर के नामी दादाओं मे था, जो सिनेमा में ब्लैक करने से लेकर मोटर स्टैण्ड पर बसों का सामान पार करने के धन्धों में अग्रणी था । रमेश बच्चू ने कहा, 'रामधन जी तो पहले से व्यापारी थे, उस्मान भाई पढ़े लिखे थे, पर अपन ! ...! अपन न अण्टी में धेला, न कण्ठी में विद्या, पर निर्धन के धन...कौन ! दरोगा जालिम सिंह । मोटर स्टैण्ड पर हम्माली करते हुए जिन्दगी बीत रही थी, दरोगा जी ने आते ही हमारा उद्धार किया, और सिनेमा के टिकट बाबू से जान-पहिचान करवा दी । इधर मोटर स्टैण्ड पर भी अपना धन्धा सही चल रहा है । मेरी समझ से तो दरोगा जी को समाज-कल्याण मन्त्री बना देना ठीक होगा ।'

तालियों की हलकी सी ध्वनि के बाद दरोगा जी कुर्सी पर से उठे, और कहने लगे, 'आपने मुझे जो सम्मान दिया, उसके लिए धन्यवाद ! मैंने पुलिस की नौकरी में बारह साल बिताकर एक बात सीखी है, 'रक्षा करो' । क्या ! रक्षा करो—किसकी ! जो तुमसे मांगे । इसलिए मैंने केवल अपना कर्तव्य पूरा किया है, और पानी की धार के साथ बहता रहा हूं । मैंने तबादला खुद नहीं करवाया, मेरा तबादला किया गया है,

पर मैं वहां भी अपनी सेवा से आप जैसे नागरिकों का मन जीत लूंगा। धन्यवाद।' दरोगा जी अपनी जगह बैठ गए। उन्हें व्यापारी और धंधेबाज लोगो की ओर से भेंट दी जाने लगी। और ऐसा लगा कि अब विदाई समारोह खत्म होने ही जा रहा है कि किसी ने आकर रामधनजी के कान मे फुसफुसाकर कुछ कहा। रामधनजी ने फरमाया, 'साथियो, इससे पहले कि कार्यक्रम समाप्त हो, हमारे ही एक साथी, जो अभी-अभी अजमेर से जमानत पर छूट कर आये हैं, दो शब्द कहेंगे।' श्री भाई इंकार जी।'

इंकार जी ने कहा, 'साथियों, मैं अपनी ओर से दरोगा जालिम सिंह का आभार प्रकट करने आया हूं, क्योकि आज मैं जो कुछ हू, वह दरोगा जालिम सिंह की वजह से हूं। दो साल पहले मैंने एम० ए० किया और एक टुच्ची बाबूगिरी के लिए चप्पलें घिस रहा था। साथ ही साथ कुछ कविता बाजी भी कर लेता था। पर न कोई बाबू गिरी मिली, न कोई कविता कही छपी। मैं निराश था कि दरोगाजी की मेहरबानी हो गयी। उन्होने मुझे संतोष ट्रान्सपोर्ट में लगा दिया, और कुछ ही दिनो मे इतना एक्सपर्ट कर दिया कि मैं संतरों की पेटी मे अफीम पैक करके भेजने लगा। नतीजा घोसी मुहल्ले मे मेरा घर, मोटर स्टैण्ड पर मेरी दुकान, और सड़क पर दौडने वाला मेरा आपका सारे शहर का टेम्पो 'ख्वाजा की दिवानी 2917।' मुझे अजमेर में मालूम हुआ कि साहिबे इल्म जनाब बहादुर जालिम सिंह का ट्रान्सफर हो गया है, तो मुझसे रहा नही गया और जमानत कराकर सीधा यहां हाजिर हुआ हूं। मैं दुआ करता हूं कि आप जहा जा रहे हैं, शाद रहें-आबाद रहें।

थोड़ी देर तालियां बजी, लोग उठने को हुए कि भाई इकार जी ने फिर कहना शुरू किया, 'एक निवेदन और है इस मौके पर मैं एक छोटी सी चीज़ सुना रहा हूं, जिसे आप सुनकर ही जायें।' क्योकि यह मेरा पुराना शौक है। जालिम सम्पादको ने मेरी कद्र नही की, यह एक अलग बात है, तो अर्ज है कि—'

मैं एक ग्रेजुएट होकर भी बड़ा जाहिल था

घंधा करता था, धंधे के हुनर से गाफिल था
मैं एक ग्रेजुएट···।
मंसूबे दिल में थे मेरे बहुत कमाने के
लेकिन सरकार का कानून बड़ा कातिल था
मैं एक ग्रेजुएट······।
होलसेलर की तो थी पांचों उंगलियां घी में
मुझको फकत सूखा निवाला ही हासिल था
मैं एक ग्रेजुएट······।
जेल जाने के डर से रोंगटे कापते थे
साहिब के आने के पहले जीना मुश्किल था
मैं एक ग्रेजुएट······।
इसके बाद भाइयों सीन बदला है
ऐसे मे,
भाई इंकार जी ने खंखार कर कहना शुरू किया।
ऐसे में शहर दरोगा बनकर आए तुम
राही भटका हुआ अब करीबे मंजिल था
तुमने हम जैसों को तिनके का सहारा जो दिया
फिर तो मंझधार में हासिल हमको साहिल था
तेरे अहसानो करम को मैं कैसे भूल सकू
हर काम आपका तारीफ के काबिल था
रहें हम जेल मे या बाहर याद करेंगे सदा
दरोगा जालिम नाम का जो था, बड़ा रहम दिल था

इंकार जी के इस आखिरी शेर के साथ-साथ ही एक बार फिर तालियों की आवाज गूज उठी, और इसे विदाई-समारोह का समापन मान लिया गया।

त्याग ही त्याग

त्याग करना उनका स्वभाव बन गया है। वे यदा-कदा कुछ-न-कुछ त्याग करते जा रहे हैं। त्याग करने से वे निश्चित रूप से हम अन्य बाबू लोगों की तुलना मे ऊचे उठ गए हैं।···और उठते जा रहे हैं। पर त्याग करने की उनकी योजना या प्रगति का अभी दूसरा छोर नही दीख पडता है।

पहले उन्होंने पान खाना छोड़ा, हमे प्रसन्नता हुई, क्योकि प्रायः हमे ही पैसे चुकाने पड़ते थे। पहले जब वे हमारे साथ होते तो हम पान की दुकान से सरक लिया करते थे, अब हम निःशक पान की दुकान पर अड़े रहने लगे, पर हमारी कुण्डली में कुछ और ही लिखा था। एक दिन हमने कहा, 'पान चलेगा !'

'हा···पर जर्दा नही। सिर्फ मसाला।'

पान के पैसे तो हमने भुगते ही, उनसे पूछ भी लिया, 'पान आपने छोड दिया था न !'

'हां, जर्दे का पान छोड़ दिया, पर सादा पान चल जाता है। असल मे मैंने जर्दे का त्याग किया है। इससे मुंह में बास रहती है। बुद्धि का क्षय होता है, और मनुष्य में प्रमाद आता है।'

खैर साठ पैसे मे भी यह रहस्योद्घाटन महंगा नही था, यह सोचकर हमने आइन्दा के लिए कान पकड़े।

फिर एक दिन उन्होंने हमसे ही पूछा, 'तुम आजकल पान नहीं खाते !'

'क्यो ?'

'वैसे ही पूछ रहा था। मैंने तो अब पान खाना भी छोड़ दिया है।'

उन्होंने सच ही कहा था, उनके मुंह में अब पान का स्थान गुटके ने ले लिया था। अब उन्हें पान में भी दोष दिखने लगे।

धीरे-धीरे दफ्तर के सभी लोगो को पता चला कि उन्होंने इस या उस चीज का त्याग करना अपना नियम बना लिया है। त्याग करने से उन्हे भोग जैसा ही सुख मिलता है।

कभी उन्होंने टमाटर का त्याग किया, कभी करेले का, बेसन का त्याग उन्होंने प्रत्येक गुरुवार के लिए कर रखा है।

उनके मुरीदों मे मैं भी हूं, पर आज तक जान नही पाया कि इन सब वस्तुओ के त्याग का कारण क्या है।

इतना अवश्य है कि वे जिस वस्तु का त्याग करते है उसका पूरा रिकार्ड रखते हैं। जिन वस्तुओं को त्याग के बाद दुबारा सेवन मे लेना चालू किया, उसकी अवधि का हिसाब भी उनके पास है। सिगरेट का त्याग वे दो बार और महात्याग दो बार कर चुके हैं। महात्याग की अवधि एक वर्ष से अधिक होती है। उनके महात्याग की रेंज मे अमिताभ बच्चन भी आ चुके हैं, पर गंगा किनारे वाले छोरे की किस्मत अच्छी है कि अब वे दुबारा उसकी फिल्में देखने लगे है। एक बार तो उन्होने टेम्पो पर बैठने का त्याग विधिवत् रूप से कर डाला। अब शामत आई उन लोगों की, जिनके पास स्कूटर या मोटर साईकिलें थी। आते समय चौराहे पर खड़े हो जाते और जाते समय दफ्तर के दरवाज़े पर खड़े हो जाते, अब किसकी मजाल जो उन्हें छोड़कर चला जाए। लोग घबराने लगे, कोई कहता, 'मैं सीधा शहर नही जाऊंगा, बीच में रुकूगा।' कोई कहता, 'हवा कम है', पर कोई-न-कोई तो फसता ही था। लिहाजा उनका यह त्याग चलता रहा, परन्तु पेट्रोल की लगातार मूल्य वृद्धि के कारण गाड़ी वालों ने आपस मे पूल बना लिये। तब उन्हें अपना त्याग छोड़ना पड़ा। और हमारी ओलम्पिक धाविका की तरह उनका यह महात्याग भी एक उपलब्धि बनते-बनते रह गया।

लोग दफ्तर में आते ही टी० वी० के कार्यक्रमों की बातें करने लगते हैं। वे ज्योतिष की बात करने लगते हैं। उन्होने टी० वी० का त्याग

कर दिया है। हम सोचते रह जाते हैं, अभी तो टी०वी० इतना पुराना भी नही पड़ा, इतनी जल्दी त्याग का शिकार कैसे बन गया···! कभी लोग स्टेशन रोड पर हुई ट्रक-ट्रैक्टर भिड़ंत की बात करते हैं, तो पता चलता है कि उन्होने स्टेशन रोड का ही त्याग कर दिया है। उस रोड जाते ही नही। क्यो ! ···यह पूछने की किसी की हिम्मत नही होती। उनके त्याग की सूची बहुत लम्बी है। इसमे फिल्म स्टार माला सिन्हा, काजू, नीले रंग की धारीदार कमीज से लेकर लक्स साबुन, माया अगरबत्ती और राष्ट्रदूत नामक अखबार कभी-न-कभी शामिल रह चुके है। त्याग करना और त्याग करने की दूसरो को जानकारी देना दो अलग बातें हैं। जैसे किसी वस्तु का उपभोग करना या उपभोग की जानकारी देना। जानकारी देने के पीछे दम्भ और हीन ग्रन्थियो की ऐसी चाभी होती है, जिसके लगते ही व्यक्ति एक खिलौने की तरह चलने-फिरने व बोलने लग जाता है। कुछ लोग लिखने भी लग जाते हैं। उनके लिए 'हमने आम खाए' शीर्षक से लेख लिखना भी उतना ही सरल है, जितना 'हम अमेरिका हो आए' शीर्षक पर। इसी प्रकार लोग चाहे नौकरी से निकाले गए हों या मंत्री पद से अपने त्याग का वक्तव्य अवश्य दे देते हैं। यह चाभी हर तरह के व्यक्ति को लगती है। दफ्तर के एक अदना से बाबू हमारे श्री मोहन लाल को भी है तो विचित्र बात नही, अफसोस केवल यह है कि त्याग का बखान करने वाला यह क्यो नही सोच पाता कि मैं मूर्खता कर रहा हू। □

आए दिन बहार के

यह श्रम कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत चलने वाला कैण्टीन है। इसका फैक्ट्री से गर्भ और भ्रूण का सम्बन्ध है। फैक्ट्री का मालिक मैनेजर है और कैण्टीन का मैनेजर मालिक है। मालिक यानि ईश्वर।

जब फैक्ट्री की हालत अच्छी होती है, तब कैण्टीन की हालत पतली रहती है। सभी श्रमिक, सुपरवाइजर और बाबू लोग लंच के नियत समय पर अपने काम के स्थान से उठते हैं। काउण्टर से कूपन खरीदते हैं। और लाइन मे लगकर रूखा-सूखा जैसा मिले अपने-अपने भाग (या भाग्य) का लेकर उसी में सन्तोष कर लेते हैं। लेकिन आजकल फैक्ट्री की हालत पतली है। माल बिकना बन्द होता जा रहा है। इसलिए मशीनें चलना कम हो गया है। इसलिए सुपरवाइजर अपने प्रोविडेण्ट फंड का हिसाब जोड़ने में या को-ऑपरेटिव सोसाइटी से ऋण लेने में सक्रिय हो गए हैं। और श्रमिक···बेचारा ! कोई कम्पनी के साबुन से पेंट-कमीज धोने मे, कोई जर्दा खैनी की जुगाली मे तो कोई टायलेट की सेवाओ का लाभ उठाने मे व्यस्त रहता है, और सबकी नजरें घड़ी की सुईयो पर रहती हैं। बारह बजने से पहले विश्वकर्मा की सभी सन्तानें कैंटीन की शोभा बढ़ाने आ जाते हैं।

कैंटीन के रसोइये, वेटर और काउंटर ब्वॉय सब-के-सब अपनी चुस्ती-फुर्ती के साथ सेवाओं में जुट जाते हैं।

तन्दूरी रोटियो को मजदूर इस तरह एप्रूव और रिजेक्ट करते हैं, जैसे सेंसर बोर्ड फिल्मो को करता है। दाल में तड़का कम होने की शिकायत पर बावेला मच जाता है। दही में खटास का सन्देह हो रहा है। किसी को चावल की प्लेट में चावल कम नजर आते हैं।

कैंटीन इन्चार्ज सहर्ष इन सभी शिकायतों का निवारण करने का

आश्वासन देकर रेकार्ड प्लेयर पर अनूप जलोटा के भजन का कार्यक्रम चालू कर देता है। कुछ दिनों से स्पिनिंग विभाग की दो मशीनें और बंद हो गई हैं, तब से सलाद में टमाटर और प्याज के अलावा ककड़ी और नीबू भी मिलने लगा है। टेक्सटाईल के लूम अनिश्चितकाल के लिए बन्द हो रहे हैं, तब से सप्ताह में दो दिन खीर और बाकी दिनों रायता मिलने लगा है। दही की प्लेट तो रोज लीजिए।

कुछ अनुभवी व्यक्ति और अधिकांश स्त्रियां जानती हैं कि यदि जच्चा का स्वास्थ्य सुधरता दिखे तो समझो बच्चा कुछ कमज़ोर होगा, क्योंकि जो भी खुराक गर्भवती स्त्री ले रही है, वह उसी को लग रही है, गर्भ के बालक को नहीं, पर यदि जच्चा कमज़ोर होती नज़र आए तो समझना चाहिए कि बालक स्वस्थ और पुष्ट होगा। इसी सिद्धान्त पर फैक्ट्री रूपी जच्चा आजकल कमज़ोर और मरियल होती जा रही है, तब से कैंटीन रूपी बालक का स्वास्थ्य सुधरता जा रहा है।

प्रॉडक्शन मैनेजर बिसूरते मुंह को लिए कैंटीन में आता है पर कैंटीन इन्चार्ज और श्रम कल्याण अधिकारी हर मेज पर जाकर भोजन पा रहे (अर्थात् खा रहे) व्यक्ति के पास राजीव गांधी और राजेश पायलट की भांति कैंटीन के खाने के बारे में पूछ रहे हैं। कैंटीन की फ्रिज में आम और खरबूजे रखे जाने लगे हैं। हर मेज पर जहां पहले पानी का जग भी गायब रहता था, नमक-मिर्च की डिब्बियों के साथ भुना हुआ जीरा भी उपलब्ध है।

गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य का प्रमाण इससे बढ़कर क्या होगा कि जहां सुबह केवल चाय मिलती थी, अब सप्ताह में तीन दिन समोसा, दो दिन आलू-बड़ा, और एक दिन प्याज-कचौरी मिलने लगी है। कैंटीन की सेवाओं का स्तर और गुणवत्ता आजकल देखते बनती है। उत्पादन गिर रहा है। माल बिकना कम हो रहा है और···! इधर बिजली बोर्ड ने कारखाने की तरफ लाखों रुपयों का अपनी बिजली का पुराना बिल निकाल दिया है। इसके साथ ही कैंटीन में एक ओवन लगा दिया गया है, जिसमें घर से खाना लाने वाले बन्धु अपना स्टील का (प्लास्टिक

का नहीं) लंच बाक्स रखकर गर्मागर्म खाने का लाभ (या मजा) उठा सकते हैं।

कैंटीन मे जाने पर अब लगने लगा है कि इस कारखाने में इतने व्यक्ति काम करते हैं। पहले कई सुपरवाईजर प्लाट मे और बाबू लोग दफ्तर में ही खा-पीकर काम मे जुट जाते थे। अब तो क्या कहने हैं···! कैंटीन ब्वॉयज को देखकर नये मैनेजमेंट ट्रेनीज शर्म से सिर झुका लेते हैं। उनके भविष्य के आगे फैक्ट्री की डगमगाती नैया है। कैण्टीन ब्वॉयज के सामने मलाई की प्लेट, खीर का प्याला, और दही की पूरी भगोनी है।

आला अफसर जो ब्रैड के दो-चार स्लाइस लिया करते थे, अब तसल्ली से परांठे और सरसों का साग पा रहे हैं। उत्पादन का उतार है, और कैंटीन में बहार है। □

पुलिस और तांत्रिक शास्त्र

छोटे-छोटे गोल-मटोल बच्चो के गले में माता-पिता तावीज बाध देते हैं। गावो मे और कस्बों मे यह चलन वीडिओ संस्कृति के बाद भी जारी है, और शहरों मे भी। तावीज की या काजल की वैज्ञानिक आधारभूमि पर विवाद करना जरूरी नही यह विश्वास की बात है।

तावीज से बुरी नज़र वाले का मुह काला हो जाता है। हमारा पुलिस के तावीजों मे बहुत विश्वास है। और जिनका इनसे पाला पड़ता है, उन लोगो का भी।

पुलिस के अतिरिक्त टैक्स विभाग, आबकारी, सप्लाई, और इसी तरह के अन्य विभागों मे भी झाड़फूक का प्रचलन है।

नव उद्यमी को पुराने पापड तावीजो का महत्व सिखाते है। जो गुरु की बताई राह पर चलते है, वे तर जाते हैं। जो हेकड़ी में रहते हैं, उन्हें नजर लग जाती है। फिर वे ऐलोपैथी, होम्योपैथी या आयुर्वेदीय पद्धति से अपना इलाज कराते फिरते हैं। पर यह प्रक्रिया श्रम साध्य और समय साध्य है। इसलिए तावीज एक उत्तम और सरल उपाय है। व्यवसायी अपने रोजगार को औलाद के समान ही प्रेम करता है। और धन्धे को बुरी नजर से बचाने के लिए गले मे तावीज बांध लेने को श्रेयस्कर समझता है।

विभिन्न धंधो मे कई प्रकार के गण्डे मुफीद होते हैं। यह सब सावधिक यानि मियादी होते हैं। इनको मुख्य दो वर्गों मे समझा जा सकता है। (1) नियमित और (2) अनियमित।

वर्ग नियमित मे सर्वाधिक प्रचलित तंत्र शास्त्र मे हफ्ता कहा या जाना जाता है। मट्टे में लगे हुए उद्यमी इसी प्रकार के तावीज को सबसे

पॉवरफुल औलिया से प्राप्त करते हैं और पूरे सप्ताह तक निर्द्वन्द होकर अपना व्यवसाय चलाते हैं। हफ्ता तावीज एक निश्चित भेंट के बाद प्राप्त होता है। और इसे प्राप्त करके फिर स्थानीय अखबार में छपने वाली किसी भी खबर से सम्बन्धित व्यवसायी का बाल बांका नही होता।

कई धन्धे ऐसे हैं, जिन्हें अखबार की बुरी नज़र से बचाना जरूरी है। ऐसे धंधेबाज पहले से ही ताबीज़ बनवाकर रख लेते है, परन्तु कुछ व्यवसायी असावधान होते हैं। वे अपने धन्धे के लिए कोई उपर्युक्त उपाय नही करते। कभी-कभी अखबार वाले की बुरी नज़र लग जाती है। और धन्धा संकट में पड़ जाता है। इस संकट की बेला में भी बचाव का यही एक उपाय है। किसी झाड़-फूक करने वाले के पास एप्रोच भिड़ानी पड़ती है।···और फिर से तावीज़ प्राप्त कर लिया जाता है।

एक ताबीज ऐसा है, इसकी फीस अधिक होती है, और इसका असर भी एक मास तक रहता है। इसे 'महीना' कहा जाता है। अधिकतर इसका उपयोग चाय के होटल में शराब बेचने वाले दुकानदार करते है। ईर्ष्यालु व्यक्ति अखवारों मे इस प्रकार के विषय उठाते है। इन अखबारो की प्रतियां थानों में पहुंचती हैं, पर 'महीना' ताबीज़ के बल से धन्धे पर आंच नही आती।

ट्रेफिक पुलिस एक प्रकार के तावीज टेम्पो चालकों को देती है। जिसे सीजन कहते हैं। मेले के दिनो में या किसी फिल्मी कार्यक्रम के लिए जब सवारियां खचाखच भर के तीन पहिए के टेम्पो के चलने की रूत आती है तो उसके पहले ही दूर दृष्टि वाले चालक ट्रेफिक पुलिस के जानकारों से सीजन नामक ताबीज़ प्राप्त कर लेते हैं और निश्चिन्त हो जाते हैं।

दूसरे धन्धे में लगे हुए लोगों को भी छोटे-बड़े ताबीजों की समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है।···और इसकी व्यवस्था होती-रहती है। ढाबे वाले अपने ग्राहकों की सेवा में सोमरस प्रस्तुत करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। इसके लिए आवकारी विभाग का मंतरा हुआ ताबीज़

उपयोगी होता है। दूध वेचने वालो को अपना धन्धा बुरी नजर से वचाने के लिए फूड इंस्पेक्टर का गण्डा आवश्यक होता है।

छोटे-छोटे दुकानदार, जो सडकों के किनारे पर दुकानें जमा लेते हैं, उन्हें भी ट्रैफिक पुलिस से छोटा-मोटा टेम्परेरी तावीज वनवाना जरूरी होता है। इस तावीज़ की उपलब्धि से वे महिनो तक अपना ठेला सडक पर इधर-उधर कही भी जमा सकते हैं।

तंत्र शास्त्र में गण्डा, तावीज, कण्ठा आदि के अलावा यंत्र का उल्लेख भी है। यंत्र का उपयोग पुलिस में भी होता है। पर यह यंत्र चांदी, तांवे अथवा भोजपत्र पर लिखा हुआ अंकों का योग न होकर दूरभाप यंत्र टेलीफोन होता है। इस यंत्र (टेलीफोन) पर भी पुलिस का वड़ा विश्वास है। पुलिस कर्मी जव किसी अपराधी या सदिग्ध व्यक्ति को पकड़ते हैं, तो थानेदार के पूजा कक्ष में रखा यत्र टनटनाने लगता है। इस यंत्र मे किसी प्रभावशाली यक्ष, गन्धर्व, किन्नर रूपी स्थानीय नेता, एम० एल० ए०, या पार्टी के जिला अध्यक्ष की वाणी जयराम आती है जिसे सुनकर थानेदार के सम्पूर्ण शरीर मे कभी करंट दौडता है, कभी *कान पर जू भी नहीं रेंगती। तव प्रचण्ड अनुष्ठान करने की प्रक्रिया* आरम्भ होती है। इसका उपाय भी थाने का रीडर या घिसा हुआ यू० डी० सी० वताता है और स्वयं को तथा अपने धंधे को वचाने के लिए अमुक व्यापारी उसी विधि से धूप अगरवत्ती का प्रवन्ध करता है। अव तक की जानकारी यही है कि पुलिस इस प्रकार की धूप अगरवत्ती के वाद प्रसन्न हुए विना नही रहती और व्यापारी का वच्चा (यानि धंधा) चल निकलता है। □

सीजन किंग

एक तो किंग सीजर था—महाप्रतापी, पराक्रमी और चक्रवर्ती सम्राट। एक किंग सीजन होते हैं, जिन्हें सुविधा की दृष्टि से सीजन किंग कहा जाता है।

ये भी अपने क्षेत्र के खलीफा होते हैं, जैसे मदन महाराज, जो अपनी गुमटी में नए साल की डायरी, ग्रीटिंग कार्ड, कैलेण्डर और जन्त्री बेचते हैं।

मार्च में वहां गुलाल और पिचकारी का बड़ा जमाव नज़र आता है। अप्रैल-मई में पतंगें, फिर उसी में गन्ने का रस, और जल-जीरा बिकने लगता है। जुलाई आते-आते वहां बस्ते और बरसातियां आ जाती हैं। और छोटे-बड़े छाते। और देखते ही देखते राखी आ जाती है और अलग-अलग धंधों का मौसम अपनी करवट लेता रहता है।

सीज़न किंग की यह गुमटी अपने आप में गतिशील और परिवर्तनशील समय की साक्षात् उपासना स्थली होती है।

राखी के बाद इस दुकान में चाय बिकने लगती है और दो महीनों के बाद चूना और पेन्ट तथा कुछ समय बाद पटाखों की भरमार होने लगती है। छोटी पूंजी और हैसियत का व्यापारी मदन महाराज साल भर धंधा करता है, और अपने आपको बनाए रखता है। उसकी दुकान के बोर्ड पर सीजन किंग मदन महाराज लिखा हुआ है। कुछ सीजन किंग छुपे रुस्तम होते हैं जो भीतर ही भीतर एकाधिक उद्यम करते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति में जुटे हुए रहते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसी प्रतिभा से अभी मेरा परिचय हुआ है, जो स्थानीय कवि के रूप में स्थापित होने के लिए प्रयत्नशील है। साथ

ही साथ गायन के क्षेत्र में भी जुगाड़ जमा रखा है। नाटकों का मंचन भी करते हैं, और नगर सेठ के सहयोग से सांस्कृतिक संध्या का आयोजन करते हैं। मंच पर आना और जमना दोनो जरूरी हैं, इसलिए मंच व्यवस्था उद्योग (अर्थात टेन्ट हाऊस) का काम भी हाल ही मे शुरू कर दिया है। उनकी दूर दृष्टि और पक्के इरादे की प्रशंसा उनका परम विरोधी भी किए बिना नही रह सकता। जीविका यापन के लिए लॉटरी की एक छोटी सी दुकान भी चलाते हैं।

सीजन किंग की प्रतिभा अपरिमित होती है, उसे धंधे के उतार-चढाव का बराबर ध्यान रहता है। वे चालू धंधे के ठप्प होने से पहले ही उसका विकल्प ढूंढ चुके होते है। इस सम्बन्ध मे हमारे कस्बे की प्रमुख प्रतिभा अलानूर का नाम भी उल्लेखनीय है। वह फिल्मो मे ब्रेक चाहता था, पर इसके लिए या तो वह बम्बई जाता या कोई डायरेक्टर झाला-वाड मे आता—दोनो ही काम नही हुए। इसलिए अलानूर, नारायण टाकीज के साइकिल स्टैण्ड का ठेका लेकर सिनेमा व्यवसाय से जुड गया। इंटरवैल मे मूंगफली बेचने लगा। उसका टू-इन-वन बिजनिस चल रहा है, पर सीजन किंग केवल दाल-रोटी के लिए ही नही पैदा होता। उसे चाहिए नाम, दाम और जाम। इसलिए अलानूर छोटा-मोटा चूना-पुताई का काम भी करता है। पाटन के मेले मे पुराने ऊनी कपडों को बेचने का धन्धा भी करता है। शादी में बैण्ड भी बजा लेता है। उसको दाम और जाम इन सबसे मिल जाता है। नाम भी मिलता है। फिर भी अलानूर एक छोटे स्तर का सीजन किंग है। मध्यम स्तर का सीजन किंग है, नारायण सिंह। जिसने अपना कैरियर चाय की दुकान पर कप-प्लेट धोने से शुरू किया और देखते-देखते चाय के होटल का मालिक बन गया। फिर इंका का सदस्य बना। जनता राज में जेल गया तो इन्दिरा राज मे कार्यकारिणी में आ गया। और राजीव राज मे ठेकेदारी कर रहा है। नगर अध्यक्ष के पद पर नजर रखते हुए होटल चला रहा है। प्रापर्टी डीलर का काम कर रहा है। और···ठेकेदारी···! हां, वो भी चल रही है। उच्च श्रेणी के सीजन क्रम में गुरूजी भगवती प्रसाद आते

हैं। अध्यापन करते हैं, उससे अधिक ट्यूशन में कूटते हैं। फिर बोर्ड की कापियां जांचने के लिए बटोर लेते है। और गर्मी की छुट्टियों में पैतृक धन्धा शादी, विवाह, पूजा, कथा अ [illegible] अगणित अध्यापक भी कर लेते हैं [illegible] निवेदन है कि हर साल बोर्ड के एक या दो पेपर आउट करवाने की कला में पण्डित जी को विशेष योग्यता प्राप्त है। यह ऐसी गूढ़ विद्या है, जिसके कारण आप विद्यार्थी जगत में और उनसे भी अधिक अभिभावक जगत में सीजन किंग के रूप में जाने जाते है, जिनके नालायक बच्चों की वैतरणी को आप पार लगा देते हैं।

यह अद्भुत प्रतिभा यशपाल कपूर मे भी थी, और आर. के. धवन में भी। कुछ मे यह प्रतिभा उल्टे क्रम में होती है, जैसे दांतों के डॉक्टर पंजवानी मे। दांतों के डॉक्टर की दुकान खोलकर हमारे कस्बे में कई सालों तक मक्खियां मारता रहा। फिर उसी क्लीनिक में किराये पर साइकिल चलाने लगा। साइकिल किराए पर चली कम, टूट-फूट अधिक हुई। तब नल-बिजली के बिल जमा करने का काम करने लगा। वह भी नही चला तो अब अखबार बेचता है। हर ग्राहक के दांतों पर नजर रखता है और उसे अपना स्वनिर्मित कुलंजन का दंतमंजन काम में लेने की सिफारिश करता है।

सीजन किंग के अलावा सीजनक्वीन भी होती हैं, पर वे लाखों में एक होती है। हमारे कस्बे की जनसंख्या छत्तीस हजार है, इसलिए अभी ऐसी प्रतिभा उभरकर सामने नही आयी है। आने को है (एक तो मेरे घर में ही है) पर अभी से कहना या लिखना उपयुक्त नही। [

साहित्य की उपेक्षित विधाएं

(अ) गद्य साहित्य में हर प्रकार के कूड़े-कचरे को विधा के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया गया है। परन्तु स्मारिका विधा का अभी तक कोई पक्षधर सामने नही आया है। यहां तक कि स्मारिका विशेषज्ञ भी इन विषय मे अधिक उत्साही प्रतीत नही होते।

क्या विडम्बमा है कि कवि सम्मेलन मे कवि कविता कम चुटकले अधिक सुनाते हैं, और वाहवाही लूट लेते हैं (मेहनताना तो खैर लेते ही हैं)।

कथाकार चुक जाने के बाद भी आत्मकथा या जीवनी लिखने में नाम भुना लेते हैं। उपन्यासकार अपनी अभूतपूर्व रचना पर ही उम्र भर आत्मकथा लिखते रहते हैं, लेकिन स्मारिका वाले! बेचारे! कभी भूलकर भी स्मारिका का जिक्र नही करते। वे तो कर्मनिष्ठ होते हैं, एक स्मारिका की रचना के बाद दूसरी स्मारिका की रचना (या-जोड़-तोड़ मे) मे प्रवृत हो जाते हैं।

स्मारिका ऐसी विधा है, जो अप्रकाशित नही रहती। उसकी रचना ही तब होती है, जबकि प्रकाशन राशि की प्रचुर मात्रा मे व्यवस्था हो जाती है। स्मारिका किसी अवसर से सम्बन्धित होती है। इसमें उन सभी महानुभावों का उल्लेख होता है, जिन्होने उस उत्सव, समारोह अथवा जयंती को सफल बनाने मे तन-मन-धन लगाया हो।

स्मारिका मे अब नए प्रयोग भी होने लगे हैं। पहले स्मारिका मे किन्ही विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा भेजे गए शुभ कामना पूर्ण पत्रों का सचित्र प्रकाशन होता था। अब इन पत्रो के प्रकाशन से अधिक महत्व कार्यक्रम की विभिन्न समितियो के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सहायको व सदस्यो के परिचय को दिया जाता है।

फिर एक लेख उस स्थान से सम्बन्धित होता है, जहां यह कार्यक्रम हुआ। इसकी रचना देखते ही बनती है। आजकल लेख के साथ-साथ कविता भी चिपका दी जाती है।

खेलकूद प्रतियोगिता की स्मारिका मे पिछले रिकार्डस् दिये जाते हैं। किसी महापुरुष की जयंती समारोह की स्मारिका में उस महापुरुष के जीवन वृत की महत्वपूर्ण तिथियों व उपलब्धियों का वर्णन होता है।

स्मारिका विधा में काव्य और गद्य विधा का सुन्दर उपयोग किया जाता है। कवि मूखों मरते हैं, और गद्य लेखक ट्यूशन करके जीवन यापन करते हैं। परन्तु स्मारिका विधा के खिलंडरों की पांचों घी में हैं। उन्हें केवल विज्ञापन बटोरने होते हैं। यह कार्य कभी-कभी दूसरे कार्यकर्ता अथवा पदाधिकारी करके पकी पकायी स्मारिका के सम्पादक (अथवा सम्पादक मण्डल) के आगे परोस देते हैं, और तब साहित्य की यह अद्‌भुत विधा प्रेस का रुख करती है। स्मारिका सचित्र होती है। इससे स्मारिका में चार चांद लग जाते हैं।

(ब) जन्त्री प्रकाशन को साहित्य के मुख्य द्वार से प्रवेश की सख्त मुनादी है, पर हुआ करे। हर प्रान्त और क्षेत्र में जन्त्री प्रतिवर्ष छप रही हैं। और बिक रही हैं। जन्त्री की रचना में ज्योतिष शास्त्र और विज्ञापन बटोर कला का समुचित समन्वय होता है। यह भी एक लाभकारी विधा है। आकार को बढाने के लिए दैनिक उपयोग की जानकारी भी जोड़ दी जाती है। साहित्य वही है, जो पाठक को ज्ञान दे और उपयोगी हो।

जन्त्री में रोडवेज की बसों की समय-सारिणी और प्रमुख स्टेशनों का किराया व दूरी दी जाती है। रेलवे का किराया व डाकखाने की जानकारी भी जन्त्री में सम्मिलित होती है। इतनी जानकारी का सागर तीन-साढे तीन रुपये मूल्य की जन्त्री रूपी गागर में भर पाना अपने आप में सराहनीय कार्य है। यहीं तक नही, जन्त्री में वशीकरण मन्त्र, करामाती रुमाल तथा जादुई अंगूठी प्राप्त करने का पता मूल्य/शुल्क सहित दिया जाता है। खोई हुई ताकत को पाने की दवा, घरेलू सिनेमा मशीन, तथा एकांत

में पढ़ने योग्य पुस्तकें मंगाने के पते भी उदारतापूर्वक दिए जाते है। संक्षेप में जन्त्री विधा साहित्य की एक उपयोगी विधा है, जिसे दुराग्रही साहित्यकारों ने आज तक समुचित स्थान नही दिया है।

(स) विद्यालय पत्रिका अपने आप में साहित्यिक रचना है। एक ओर कामर्स ग्रेजुएट या कथित कवि जो (मूलतः साइन्स या बहुधा कानून जैसे नीरस विषयों के स्नातक होते हैं) साहित्यिक पत्रिकाएं निकाल कर गाल बजाने लगते हैं तो दूसरी ओर सरस्वती के मन्दिर में जन्मी विद्यालय पत्रिका को किसी भी साहित्यिक विधा में नही गिना जाता। कारण केवल इसके सृजनकारों की वैराग्य भावना अथवा पर्याप्त पक्षधरों का अभाव है।

विद्यालय की पत्रिका मे प्रधानाचार्य के चित्र प्रचुर मात्रा मे होते हैं। वे एक कुर्सी पर बैठे होते हैं, और उनके बाजू मे वरिष्ठ अध्यापक बैठे होते है। एक पोज मे प्रधानाचार्य पत्रिका के सम्पादक मण्डल दे नाल नजर आन्दे सी। एक चित्र में छात्र संसद के कार्यकारिणी के सदस्यो के मध्य भी दृष्टिगोचर होते हैं। चित्रों मे चित्र एक सर्व श्रेष्ठ छात्र का भी होता है। किसी मंत्री के विद्यालय भ्रमण के अवसर पर माला पह-नाते हुए चित्र मे भी छात्र संसद का नेता या प्रधानाचार्य (अथवा दोनो भी) एक चित्र में दिखाई देते हैं।

इसके बाद गद्य खण्ड में कहानी और लेख का कचूमर निकाल देने वाली रचनाएं स्थान पाती हैं। इसके सृजक विद्यालय उद्यान की कोपलों (प्रथम वर्ष के छात्र) से लेकर बूढ़े ठूंठ (रिटायर्डोन्मुखी अध्यापक) होते हैं। पद्य की सम्पादिका प्रायः अध्यापिका होती हैं और इसमे काव्य की खेती का यूरिया बिखेरा जाता है। हिन्दी के बाद आंग्ल भाषा की सेवा की जाती है जिसे कम्पोजिटर के अलावा कोई नही पढ़ता। पत्रिका में विद्यालय परिवार के समस्त सदस्यो का वर्णन मय शिक्षा और पद को दिया जाता है। इस पत्रिका का प्रकाशन कर विद्यालय साहित्य की निरंतर सेवा करता है।

स्मारिका का प्रकाशन विज्ञापन राशि से होता है और इस प्रकार

इसका मूल्य पहले ही चार्ज कर लिया जाता है। स्मारिका विज्ञापन राशि के वृक्ष से लिपटी एक लता है। विद्यालय पत्रिका स्कूल के बजट में से छापी जाती है। यह उस डिब्बे के समान है, जिसमें 400 ग्राम तेल आता हो, पर 500 ग्राम तेल डाला जाता है। इनके प्रकाशन पर निर्ममता पूर्वक पैसा बहाया जा सकता है। जन्त्री इन दोनों से थोडी भिन्न रचना है, जो शादी की तारीखें, नूतन गृह-प्रवेश के अवसर (शुभ अवसर) आदि की जानकारी से लेकर प्रधानमंत्री के वर्षफल तक की जानकारी देने के आदर्श पूर्ण लक्ष से तैयार की जाती है, और गली-गली में बेची जाती है।

देखना यह है कि ऐसी अनुपम कृतिया कब सद्-साहित्य की गणना मे स्थान पायेंगी ! □

अधिकारियों के गुप्त भेद

अधिकारियों के भेद अधिकारी भी नही जानते। फिर भी भौगोलिक दृष्टि से इन प्राणियों को दो रूप मे जाना जा सकता है। स्थानीय अधिकारी और प्रवासी अधिकारी। दोनो संज्ञाओं के अर्थ सापेक्षिक हैं। स्थानीय अधिकारी कालांतर मे प्रवासी अधिकारी हो जाता है अथवा हो सकता है। प्रवासी अधिकारी प्रायः प्रवासी ही बना रहता है परन्तु किन्ही परिस्थितियो के फलस्वरूप स्थानीय अधिकारी बन जाता है। दोनो मे अन्तर है, प्रवासी अधिकारी, शुद्ध सरसों का पोस्टमेन ब्राण्ड अधिकारी है। स्थानीय अधिकारी रेपसीड ऑयल अथवा तारामिरी मिश्रित है। फिर भी उसके अधिकारी होने की स्थिति मे शंका नही की जानी चाहिए।

सरकारी सस्थाओ में प्रवासी अधिकारी को स्थानीय होने में अधिक परिश्रम करना पड़ता है। निजी संस्थानों मे स्थानीय अधिकारी प्रायः कम होते हैं। यहां प्रवासी अधिकारी का 'कोटा' अधिक होता है। इनमे से ही कोई महाबली वेताल अपनी तरकीबो से स्थानीय अधिकारी बन जाता है। सरकारी चिकित्सालयों मे प्रायः प्रवासी अंगद के पैर की भाति अचल हो जाते हैं। शिक्षा सस्थाओं में भी यह गुण बहुतायत से सुलभ है। कुछ भूखण्ड भी बड़े उर्वरक होते हैं। यह उर्वरकता भी प्रवासी को स्थानीय बनने के लिए प्रेरित करती है, फिर स्थानीय पत्रकार, नेता और सम्पादक के नाम पत्र लिखने वाले जागरुक नागरिक भी ऐसे अधिकारी का बाल बाका नही कर पाते। हाड़ौती भूमि इसका ज्वलंत उदाहरण है। निजी संस्थानों में स्थानीय अधिकारी बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। निजी संस्थानों मे स्थानीय कारीगर, मजदूर, वेलदार, बंधानी, बाबू आदि सब मिल जाएं लेकिन स्थानीय अधिकारी कम मिलेंगे। स्थानीय

सुपरवाईजर या बाबू को ही जब प्रबंधक वर्ग अपनी कृपा का पात्र बना लेता है तो स्थानीय अधिकारी अस्तित्व में आता है। स्थानीय अधिकारी प्रमोशन होते ही साइकल पर आना छोड़ कर स्कूटर ले लेता है। फर्नीचर सब्सेडी प्राप्त होते ही पंखे के स्थान पर कूलर लेता है। टिप्टा, कैंथूनीपोल आदि स्थान छोड़कर वल्लभ नगर में रहने लगता है। उसके बच्चे सेन्ट जोन्स में ज्ञान अर्जन करने जाने लगते हैं। उसकी अर्द्धांगिनी ब्यूटी पॉर्लर जाती है और नाश्ते में स्थानीय अधिकारी पराठे के स्थान पर ब्रेड-बटर खाने लगता है। ऐसा वह किसी चिकित्सक के परामर्श पर नही करता। वस्तुतः उसके ज्ञान चक्षु हाल ही मे खुल चुके होते है।

उसकी मानसिक रुचि भी बदल चुकी होती है। वह 'कल्याण' का वार्षिक शुल्क समाप्त होने पर नवीनीकरण नही कराता। रीडर्स-डाइजेस्ट पढ़ने लगता है। उसके बच्चे पोयम सीखते है और पत्नि, वह भी अब फेमिना अथवा शिक से ही अपनी मानसिक खुराक ग्रहण करती है।

बरसों कचौरी और धुआदार नमकीन खाते रहने, कड़क चाय पीने तथा जर्दे युक्त कस्तूरी मजन करने का अभ्यस्त सद्योन्नत अधिकारी अब नगर के प्रतिष्ठित चिकित्सकों से मेडिकल कराने लगता है। और एवरी-थिंक ऑलराइट पाकर चिन्तित रहने लगता है। ऐसी अवस्था मे वह मेडिकल सब्सिडी से वंचित रह जाएगा। परिस्थितियां सदैव प्रयत्नशील का साथ देती है। शनैः शनैः उसके मेडिकल बिल भी कार्यालय में आने लगते है। फिर उसे पता लगता है कि वह यदि चाहे तो दो वर्ष मे एक बार छुट्टी मनाने के लिए कही भी जा सकता है और यह खर्चा उसे कम्पनी देगी। तब वह इसका भी उपयोग करता है।

देखा जाए तो स्थानीय अधिकारियो के प्रथम दो वर्ष ही स्वर्ण काल होते हैं। उसके बाद वह वापस अपनी जगह आ जाता है।

स्थानीय अधिकारी जर्दे के पान खाने का अभ्यस्त है। खाएगा। कचौरी खाने को मन ललचाता है। कब तक रोकेगा ? एक दिन वेस्पा रोक कर महावीर नमकीन भण्डार के आगे खडा हो जाएगा। उसकी पत्नि ब्यूटी पार्लर जाना छोड़ देती है। रीडर्स-डाइजेस्ट आना बंद हो

जाती हैं। बच्चे भी पोयम भूलकर स्कूल में मीरो 'श्लोक मंत्र' उच्चारित करने लगते हैं। स्थानीय अधिकारी को आयातित अधिकारी बराबरी का दर्जा भी नहीं देता।

वह बोनाफाइड है। यह प्रोमोटिड है। अन्तर कहा जाएगा।

अब स्थानीय अधिकारी बाबू से, बंघानी से सम्बन्ध मधुर बनाने लगता है। पर···प्रथम दो वर्ष की थोड़ी सी बेवफाई को बाबू बंघानी आदि नहीं भूलते। तब वह अपने ही जैसे किसी स्थानीय अधिकारी को ढूंढ निकालता है। प्रत्येक संस्थान में एक-आध मिल भी जाता है। अब लोकदल (कर्पूरी ठाकुर) का गठन होने लगता है। स्थानीय अधिकारियो की अलग मण्डली होने लगती है। यह लच से पहले ही केबिन में बैठ कर लंच कर लेते हैं और लच मे कारखाने के बाहर आकर पान खाकर या गन्ने का रस पीकर तृप्ति प्राप्त करते हैं। कुछ स्थानीय अधिकारी मूलतः प्रकृति प्रेमी होते हैं। वे नहर तक जाकर कपड़े धोने या नहाने वाली रूपसियों के दर्शन करके नयन सुख प्राप्त करते हैं। जिनको समय पर फैक्ट्री मे पहुचने की जल्दी होती है। वे फल-तरकारी बेचने वाली नव यौवना से अमरूद-सन्तरे लेकर ही सन्तोष कर लेते है।

प्रवासी अधिकारियों की अपनी मण्डली होती है। ये प्रायः पर्याप्त शिक्षित होते हैं। इनके ग्रेड भी अधिक होते हैं। लच में प्रवासी अधिकारी रेडियो या अखबार की सुबह सुनी या पढ़ी खबरो पर गर्मागर्म बहस करते हैं। कार के सम्बन्ध मे बात करते हैं शेयर की बातें करते हैं। प्रवासी अधिकारी चौराहे तक नहीं जाते। कोई धूम्रपानग्रस्त अधिकारी अधिक से अधिक गेट के बाहर आकर सिगरेट अवश्य पी लेता है। प्रवासी अधिकारी केवल अंग्रेजी फिल्म देखता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम, कला प्रदर्शनी, आदि उसके क्षेत्र हैं। वह लायन्स क्लब का मैंम्बर होता है। परन्तु गतिशील ससार में कोई असम्पृक्त (इलिट) नहीं रह पाता। प्रवासी अधिकारी जहां का पानी पीता है, वहां का प्रभाव उसके चिन्तन पर होने लगता है। देशकाल की परिस्थितियां उसका साथ देती हैं। मोरारजी जाते हैं, तो चौधरी जी आते हैं। चौधरीजी गांवो से सबधित

योजना बनाते हैं। कारखाने का प्रवन्धक वर्ग इन योजनाओं के अन्तर्गत कारखाने से 15 कि.मी. व्यास के बाहर की सीमा में बसे किसी गाव में कर मुक्त खर्चा करने को तत्पर हो जाता है। गांव मे जनसभा भवन, चिकित्सा भवन, पुलिया, विद्यालय बनाने अथवा चम्बल के घाट अथवा किसी जीर्ण मन्दिर का उद्धार करने के कार्य किये जाते है। मुख्य अभियन्ता, सिविल अभियन्ता, विद्युत अभियन्ता, यह अभियन्ता, वह अभियता अब कम्पनी की कारो मे गावो की ओर लपकते है। सरपंच के साथ फोटू खिचवाये जाते हैं। सरपच को कारखाने में बुलाया जाता है। सरपंच उन्हें गाव मे बुलाता है। प्रणय सम्बन्धो मे तेजी से सघनता आ जाती है, और······।

मुझ जैसे बाबू को छः मास या साल भर बाद पता चलता है कि कोयम्बतूर वासी मेनन, मिदनापुर वासी मुखोपाध्याय ने भी कोटा जिले के पिछड़े गाव में राष्ट्र की हरित क्रान्ति मे सक्रिय सहयोग देने के लिए 20 बीघा या 40 बीघा जमीन खरीद ली है। सरपंच का पुत्र और तहसीलदार का भांजा टेक्साईल में सुपरवाईजर लग जाते है। चौधरी जी चले जाते है। जमीनें उन्हीं की रह जाती है। वे स्थानीय बन जाते हैं।

कभी-कभी उक्त प्रवासी अधिकारियों की स्थानीय बनने की लगन इतनी आग्रहपूर्ण होती है कि उनका शिकार स्थानीय अधिकारी को बनना पड़ जाता है। इस्राईल बनाम फिलीस्तीन युद्ध मे लेबनान पिट जाता है। स्थानीय अधिकारी श्रेष्ठतर भविष्य के लिए इच्छुक होता है। उसे छींटे मार कर ठण्डा कर दिया जाता है। और जो यही चरणों में पड़ा रहना चाहता है, उसे कम्पनी के अन्य कार्यालय में भेज दिया जाता है। उसे अधिकारी बने रहना है तो जाता है, वर्ना···नई धानमण्डी में दलाली करने लग जाता है। ☐

आशियाना ढूंढ़ते हैं

मकान मालिक और किराएदारो के सम्बन्धों पर बहुत कम लिखा गया है। इसका मुझे दुख नहीं, पर भान जरूर है। किराएदार और मकान मालिक के सम्बन्धो की कथा To Let अथवा 'किराए पर खाली है' की तख्ती से शुरू होती है। वह उसे देख कर अन्दर जाता है, जहा मकान मालिक या उसकी मां, पत्नी, बहिन या रखैल अथवा बाप, बेटा, या हरामजादा, गोया कोई भी आकर किराएदार को उस यंत्रणाकक्ष को दिखला देते है, जिसमे उसे अपनी जिन्दगी के अगले कुछ या शेष सारे दिन गुजारने है। उसकी अक्ल पर पत्थर पड़ जाते हैं और वह हंसते-हसते एडवास किराया देकर अपनी मौत का सामान ले चलने के लिए पुराने मुकाम पर आ जाता है।

यह उसके हसने, गाने या मुस्कुराने का आखिरी दिन होता है। इसके बाद···वह पिंजड़े का पंछी बन जाता है। जिसका दर्द गीतकार प्रदीप के सिवा कोई नही जानता।

मकान मालिक को एक बीमारी होती है, उसके मकान मालिक होने की। इस स्थिति मे वह किराएदार को कभी अपना बेटा कभी अपना बाप और कभी गुलाम समझने लगता है। कभी उसे नल फालतू चलता हुआ अखरने लगता है, कभी लाईट व्यर्थ जलती हुई दिखाई देती है।

किराएदार कितना भी रिजर्व रहना चाहे, मकान मालिक या उसकी टीम के दूसरे आर्टिस्ट उसे कही न कही फंसा ही लेते हैं। जब मकान मालकिन किराएदार के पक्ष मे टिप्पणी करती है तो उसकी कुचली हुई आत्मा थिरकने लगती है। लेकिन किसी दिन वही देवी जब किराएदार के बाथरूम मे अधिक समय तक नहाने पर बरसने लगती है तो बेचारे की आत्मा थिरकना भूलकर फिर से पसर जाती है। जब किराएदार

कमाऊ पूत की तरह हर महीने की तारीख को किराए की रकम मकान मालिक की हथेली पर रखता है तो पोपलाए मुंह वाला बन्दा किराएदार के सम्मान में दो शब्द व्यक्त करता है, फिर किसी महिने जब एक से दो और दो से चार तारीख तक भी किराया मकान मालिक की हथेली पर नही पहुंचता है तो उसके वाम अंग फरकने लगते हैं। और 'राग तकाजा' में मकान मालिक ऐसी ठुमरी सुनाता है कि किराएदार का आत्म-सम्मान मजबूरी के बिल मे दुबक जाता है।

मकान मालिक या उसके खिलडरे कच्छे-बनियान मे घूमते रहते है, पर किसी किराएदार की मजाल नही जो, जो पाजामा या लुंगी लगाए बिना बाथरूम से बाहर निकल जाए। केरेक्टर का सवाल आ जाता है। रेडियो का वाल्यूम काबू मे रहना चाहिए। साईकिल या स्कूटर सीधा खड़ा होना चाहिए। वर्ना ट्रेफिक इन्स्पेक्टर रूपी मकान मालिक चालान करने पर उतारू हो जाता है।

कुछ मकान मालिक साक्षात अवतार होते हैं। नल-बिजली के पैसों की बात पहले गोल कर जाते हैं। 'आपस की बात है जी, जो बिल आएगा, आपस में बांट लेंगे।' लेकिन बावरे किराएदार को पता नहीं होता कि उसके कमरे मे लैंप जलेगा या पंखा घूमेगा। अधिक हुआ तो रेडियो झक मार लेगा पर उसका हरिश्चन्द्रमय मकान मालिक अपने टी० वी०, फ्रिज, और मिक्सी का उपभोग इस हद तक करेगा कि बिल का पैसा चुकाने मे किराएदार के छक्के छूट जायेंगे।

मकान मालिक कुछ हद तक 'जिया-उल-हक' का डूप्लीकेट होता है। वह किराएदारो का आपस मे मिलना-जुलना पसन्द नही करता। उसे जाने क्यों यह भय रहता है कि किराएदार आपस मे मिलकर उसे मकान से बेदखल कर देंगे। जिस मकान के किरायेदार इस मर्म को समझ लेते हैं, वे सदैव मकान मालिक की कृपा के पात्र बने रहते हैं।

मकान मालकिन का अंदाज अपने पतिदेव से भी सवाया होता है। नए किरायेदार की गृहिणी को पुराने किरायेदारिन की खोट से अवगत कराना और समय-समय पर सतर्क कराते रहना वह अपना कर्तव्य या

अधिकार समझती है। इस पर भी जब दो किरायेदार महिलायें आपस मे *हंस बोल लेती हैं तो मकान मालकिन* के दिल पर छुरियां चलने लगती हैं।

मकान मालिक महगाई सूचनाक के प्रति सदैव जागरूक रहता है। प्रतिवर्ष या प्रति दो वर्ष मे किराये की राशि को संशोधित करना उसके *लिए अनिवार्य है और किरायेदार के लिए* ऐच्छिक। पर दूसरे मकान ढूढने का असाध्य कर्म करने मे असमर्थ किरायेदार इस संशोधन को आपात्काल मे हुए सविधान मे सशोधन की तरह मान लेता है।

मेरे साथ एक कामरेड भाई रहते थे। फैक्ट्री मे उन्होने प्रबन्धको के पसीने निकलवा दिए थे, पर मकान-मालिक के आगे लाचार थे। मकान मालिक अपने आप मे एक शेर होता है, जिसके आगे किराएदार मेमने से अधिक हैसियत नही रखता। पार्टी के अध्यक्ष को भी दुनिया दिखावे के लिए किसी सदस्य को निकालने के लिए कुछ गम्भीर आरोप लगाने या लगवाने पडते है, तब कही जाकर अमुक सदस्य का पत्ता कट पाता है, पर मकान मालिक जब चाहे किराएदार को बिना 'कारण बताओ नोटिस' दिए मकान के बाहर कर सकता है। इस मामले मे कुछ मकान मालिक बहुत घुटे हुए होते हैं। सक्सेना साहब ने विधिवत् रूप से *किराएदार निकालने के नायाब नुस्से बताने की एक* 'परामर्श सेवा संस्था खोल रखी है। यह सब नुस्खे वे खुद आजमा चुके है।

पहले वह अपने बच्चो को किराएदार के कमरे के बाहर खेलने-कूदने, बच्चा साइकिल चलाने, गेंदबाजी करने के लिए भेजते हैं। इस पर भी यदि *किराएदार को कोई आपत्ति न हो तो और वह मूढ़मति* मकान मालिक का मन्तव्य न समझे तो उनकी अगली कार्यवाही कार्य करने लगती है जिसमे किदाएदार की पत्नि या युवा बहिन के खिलखिलाकर हंसने से लेकर साड़ी पहिनने या न पहनने पर टिप्पणिया शामिल होती हैं। *फिर कुछ दिन बाद अन्य किराएदार महिलाओं मे इस आशय की* विज्ञप्ति जारी की जाती है कि रात को खट्खट् जूते पहने कोई आया था या ठकठक दरवाजा बजा रहा था, फिर पप्पू के पापा के जागकर

बाहर आने पर एकदम भाग गया आदि···की सनसनी खेज खबरों का प्रसारण शुरू हो जाता है। यदि शिवभक्त किराएदार दम्पत्ति यह गरल भी पी जाए तो मकान मालकिन पप्पू के पापा को प्रभावी कार्यवाही करने का आदेश, परामर्श या निवेदन करती है।

अब कथा में मोड़ आता है, और महामहिम मकान मालिक खुली कार्यवाही करते हैं। कभी दरवाजा बन्द करने और खोलने पर, खटखट की अनावश्यक आवाज़ पर, दरवाजा, तोड़ने की किराएदार की बदनीयती पर एतराज किया जाता है। कभी रात को मकान का सदर दरवाजा खुला रहने देने की लापरवाही पर विरोध प्रकट किया जाता है। कभी आंगन में तार बांध कर कपड़े सुखाने से, मकान को गन्दा करने से किराएदार को रोका जाने लगता है। गर्ज़ यह कि किराएदार के ज्ञान चक्षु खोल दिए जाते हैं। अगर किराएदार महा अड़ियल हुआ तो एक शुभ प्रभात या शुभ रात्रि के समय मकान मालिक शर्माजी या वर्माजी अथवा कोई भी कल्याणजी आनन्दजी नामक किराएदार को एक महीने में खाली कर देने की चेतावनी दे देते हैं, और······बेचारा किराएदार फिर से To Let का बोर्ड ढूंढने लग जाता है। □

कर-कमल

आजकल हर शुभ काम कर कमलों से होता है। कर कमलों से सम्पन्न हुआ काम ही अखबार मे स्थान पाता है, और चर्चित होता है। हमें भी कर कमलों की तलाश थी। हमारे मौहल्ले मे कुछ उत्साही युवकों ने एक वाचनालय की स्थापना समिति बनाई थी। हजारी लाल जी सोनी ने अपने बाड़े में वाचनालय की स्थापना के लिए सशर्त स्वीकृति दी थी। उनकी शर्तें मानने मे सरल थी, इसलिए स्थापना समिति ने उसे मान लिया था, और वाचनालय का नाम हजारी लाल जी सोनी के देवतुल्य ससुर जी के नाम पर हीरा लाल सोनी वाचनालय रखा जाना निश्चित हुआ। स्थापना समिति के ग्यारह सदस्यों ने 10/- रुपये प्रति-माह चंदा देना शुरू किया। दो माह के बाद कोष में समिति के सदस्यों तथा अन्य दान वीरों के सहयोग से 300/- रुपये एकत्र हो गए पर उद्घाटन के लिए कर कमल नही मिले।

स्थापना समिति के अध्यक्ष ने हमारे मौहल्ले के नेताजी श्री ढक्कन लाल से सम्पर्क किया। वाचनालय की स्थापना के विचार से वे पुलकित हुए और भरपूर सहयोग देने का आश्वासन दिया। यह कोरा आश्वासन लेने हमारे अध्यक्ष मक्खन लाल जी घर से नही निकले थे, इसलिए उन्हें लपेटने लगे। लपेटने में मक्खन लाल जितने निपुण थे, ढक्कन लाल लिपटने में उतने सरल चित्त थे। बात उद्घाटन पर पहुंच गयी। मनो-भाव को समझकर ढक्कन लालजी ने उद्घाटन करने के लिए आने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मक्खन लालजी ने भरपूर सहयोग को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। 200/- रुपयों पर बात ठहर गयी। जब कार्य-कारिणी को यह समाचार मिला तो अधिकांश सदस्यो ने मक्खन लाल

जी को सौदा पटाऊ अभियान मे सफल होने पर बधाइयां दी। निश्चित किया गया कि कार्यकारिणी के सभी सदस्यो के उपस्थित होने पर उद्घाटन तिथि, समय और अन्य कार्यक्रम निश्चित कर लिये जायें।

जब अन्य सदस्यों को यह मालूम हुआ तो उन्होंने क्रोध से फुफकार कर कहा, 'हम उस उच्चक्के ढक्कन लाल को वाचनालय में फटकने भी न देंगे। उद्घाटन करने की तो बात ही और है।'

'पर हम उनसे एडवांस भी ले मरे है।'

'तो आप मरें, हम नही मरने वाले। वाचनालय साहित्य से सम्बन्धित मामला है। हम स्थानीय 'प्रचण्ड साप्ताहिक' के सम्पादकजी को बुलायेंगे, वे भूतपूर्व स्वतंत्रता सेनानी भी हैं।'

'पर क्या, वे भी दान-दक्षिणा देंगे!' एक अर्थ कामी ने पूछा।

'तुम्हे हमेशा पैसे की पड़ी रहती है। अरे गरिमा भी तो कोई चीज है।'

वाद-विवाद ने हाथापाई का रूप न लिया, पर कार्यकारिणी दो धडो में विभक्त हो गयी। तब मध्यमाग्रियों ने समझौते के प्रयास से कहा, 'यदि आप प्रचण्ड के सम्पादक जी को बुलाते हैं, तो बुलायें, पर सहयोग राशि दो सौ से अधिक आना चाहिए।'

सदस्यगण सम्पादक जी के घर पहुंचे तो वे ईश्वरोपासना में बैठे थे। जैसे ही उन्हें पता चला, उछलकर बैठकखाने मे आ कूदे। उनका पत्र कई दिनों से बन्द पडा था। वे आजकल प्रॉपर्टी डीलर का कार्य कर रहे थे। उनसे जब सहयोग राशि देने को कहा गया तब उन्होंने तन और मन से सहयोग देने का आश्वासन दिया। 'भैया धन के अभाव में तो 'प्रचण्ड' शिथिल होकर पड़ा है। वाचनालय के लिए आपको क्या सहयोग दूं?'

'असल में हम वाचनालय का उद्घाटन आपसे कराना चाहते हैं...।'

उद्घाटन के प्रस्ताव को जानकर उनके चेहरे पर वह चमक आयी जो राशन की दुकान में शक्कर आ जाने से आम उपभोक्ता के मुख पर आ जाती है।

'अच्छा-अच्छा, तो उद्‌घाटन कराना चाहते हैं आप ! भई क्यों हमें कांटों में खींचते हो, यह कार्य तो मन्त्री और अधिकारियों को शोभा देता है। फिर भी आपके आदेश का पालन करूंगा। कहिए, कब उपस्थित हो जाऊं !'

उनकी गले पड़ने वाली तत्परता देखकर सदस्यगण घबराए। सहयोग राशि की बात याद दिलायी।

'वाचनालय मौहल्ले स्तर का है !', उन्होंने विचार करते हुए कहा, सौ चलेंगे।'

'सौ चलेंगे नहीं, अभी बताएं।'

'मैंने अर्ज किया ना सौ चलेंगे ?'

सुनकर सदस्यों को बड़ी निराशा हुई। कहा, सौ में तो कई लोग उठ पड़ रहे हैं। दो सौ कहें तो अभी फैसला होता है।'

वे मान गए।

लेकिन अब कार्यकारिणी के सदस्य संकट में थे। एक ओर नेता ढक्कन लाल से अर्नेस्ट मनी ले ली थी, दूसरी ओर सम्पादकजी को बुक कर लिया गया था। एक कार्यक्रम और दो-दो उद्‌घाटन करने वाले। आखिर एक कल्पनाशील युवक ने हल निकाला। पैसे किसी के वापस न करो। ऐसे समय पर उद्‌घाटन करवाया जाए कि एक शहर के बाहर हो। नेताजी के घर एक सदस्य पूछताछ करने गया। उसे देखते ही नेताजी ने पूछा, 'भई कब हो रहा है, उद्‌घाटन कार्यक्रम !'

'सब तैयार है, केवल फर्नीचर बन के आ जाए, फिर आपको सूचित कर देंगे।'

नेताजी ने कहा, 'ठीक है।'

सम्पादक जी की तरफ जाते, तो वे भी उनसे उद्‌घाटन कार्यक्रम के बारे में पूछते। आखिर एक बात समझ मे आ गयी। सम्पादक जी पर उनके साढूजी ने मुकदमा चलाया हुआ था, उसकी तारीख का पता लगाया गया, सितम्बर की 6 तारीख थी। सम्पादक जी से पूछा गया, 'सितम्बर माह के प्रथम सप्ताह मे विचार है, आप उपलब्ध रहेंगे !'

'हां हां, क्यों नही !', उन्होंने गद्‌गद् होकर कहा।

'कहीं आने-जाने का कार्यक्रम तो नही।'

'हां एक अदालत की तारीख है, सो बच्चे को भेज देंगे।'

उद्घाटन के प्रति उनका मोह देखकर सदस्यगण दंग रह गए। इधर कोषाध्यक्ष जी के तकाजे पर टेलीफोन आने लगे। नेताजी से दुबारा मिले। मुंह लटकाकर कहां, 'हमारी कार्यकारिणी में आपसी कलह मची है, वाचनालय की स्थापना की योजना चौपट होने की है, उद्घाटन अनिश्चित है।'

नेताजी ने बहुत उतार-चढ़ाव देखे थे। बोले, 'यह सब तो चलता रहता है, आप तो जब कहें, मैं हाजिर हो जाऊंगा।' और उन्होने अपनी लड़की की शादी का कार्ड भी उन्हे पकड़ा दिया। उनकी आत्मीयता से गद्गद् होकर कोषाध्यक्ष घर लौटे पर उत्तेजित सदस्यों ने शाम को ही उनका मूड ऑफ कर दिया। 'हम ढक्कन लालजी की टांग तोड देंगे।' 'यह सुनकर उन्हें बड़ा दुख हुआ।' 'टांगें ढक्कन लालजी की टूटें या न टूटें, हम कही मुंह !दिखाने लायक न रहेंगे।' पर विवश थे। वाचनालय समिति के अध्यक्ष पद को छोड़ा भी तो नही जाता।

कुछ दिनो बाद उनकी किस्मत साथ देने लगी। पता चला कि सम्पादक जी की तबीयत खराब है। हाल-चाल पूछने के बहाने गए। वास्तव में तबीयत कुछ खराब थी। बुखार भी था। डॉक्टर ने अधिक बोलने-चालने से मना कर दिया था।

कोषाध्यक्षजी को बैठने का इशारा किया। तबीयत के लिए पूछा तो वे क्षीण स्वर में बताते रहे। कोषाध्यक्षजी को मन में संतोष हुआ। तभी उन्होने पूछा, 'वाचनालय का क्या हुआ!' (कोषाध्यक्षजी मन ही मन सोच रहे थे कि चलो यह तो पीछा छूटा…मगर)…

'आप अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखें, वाचनालय का क्या है?'

'वाचनालय का क्या है! क्या कैसे नही है! अरे खुल गया क्या!' वे एकदम तैश मे आकर बोलने लगे, 'उद्घाटन कब हो रहा है!'

'अच्छा…अच्छा उद्घाटन! हम आपको समय पर सूचित कर देंगे।' उनका पक्का इरादा देखकर कोषाध्यक्ष दंग रह गया।

तभी हमारे कल्पनाशील मित्र ने कहा, 'क्यों न नेताजी की लड़की की शादी के दिन का कार्यक्रम नियत कर लिया जाए। मगर शक यह था कि नेताजी को सदस्यों की नियत पर शक न हो जाए। खैर नेताजी के पास एक सदस्य गया। 'क्या करें कि कार्यकारिणी ने ऐसा विकट दिन नियत किया है कि कुछ कहते नहीं बनता······।'

'क्यों क्या हुआ !'

'6 दिसम्बर को उद्‌घाटन तय किया है।'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे।'

'बेबी की शादी है······।'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे। समय !'

'शाम को आठ बजे।'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे।'

उनका 'आ जायेंगे' सुनकर हमारे कोपाध्यक्षजी के मुंह से अनायास ही 'ओह मरा' निकल गया। जिनका मतलब केवल वे ही जानते थे।

'आप निश्चिन्त रहें, और कार्य में जुट जायें।'

'आपको असुविधा होगी !'

'तो क्या हुआ, आ जायेंगे।'

आखिर एक वकील मित्र से सलाह ली। एक नेताजी को बुलवाकर दूसरे नेताजी से उद्घाटन करवा लेने पर कोई फौजदारी का केस तो नही बनता। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर कहा, 'चार सौ बीसी का मुकदमा नही बनता, पर मानहानि का केस बन सकता है।' तब हमने उन्हें सारी स्थिति समझायी। उन्होंने कहा, 'आप इसमें वाचनालय के अलावा कोई और कार्यक्रम भी जोड़ दें। जैसे कविता पाठ, या सरस्वती मा की तस्वीर पर माला चढ़ाना या दीप प्रज्जवलन आदि······।' एक से उद्घाटन, दूसरे से दीप प्रज्जवलन। आजकल यह भी खूब चल रहा है।

कुछ सदस्यों के गले बात उतरी, कुछ के नही उतरी। इधर खबर

मिली कि सम्पादक जी पिछली रात से हॉस्पिटल में भर्ती हैं। ग्लूकोज की बोतलों पर चल रहे हैं। पांच दिसम्बर को पता चला, अब तो मिन्टों का खेल रह गया है। ऑक्सीजन पर चल रहे हैं। कार्ड बांट दिये गए थे, जिनमें मुख्य अतिथि ढक्कन लालजी थे, और जो कार्ड सम्पादक जी के नाम थे, उन्हें फाड़ फेंक कर भुला दिया गया था। 6 दिसम्बर को नेताजी ढक्कन लाल थ्री व्हीलर मे अपना एम्पलीफायर और माइक लिए ठीक 6.00 बजे आ धमके।

'अरे भई, क्या तैयारी चल रही है।' यह लो मैं तो अपना ध्वनि प्रसारण साथ ले आया हूं, 'भैया !'

'और बेबी की शादी……?'

'वहां उसकी मां है ही।'

'पर पिता……?'

'अरे पिता-विता का क्या है, पिता तो सब हैं ही, उसके चाचा, ताऊ…।'

उसी समय हॉस्पिटल की एम्बूलेंस आ कर रुकी। उसमे से स्ट्रेचर पर सम्पादकजी को लिए उनके दो भूतपूर्व कर्मचारी निकले। एक नर्स ग्लूकोस की बोतल लिए पीछे-पीछे आ रही थी। सदस्यों को देखकर उन्होंने प्रसन्नता और विनम्रता के साथ पूछा' 'मुझे विलम्ब तो नही हुआ!' ☐

एक गर्भपात और

वो जमाने लद गए, जब फिल्मों में इस प्रकार का दृश्य हुआ करता था, जिसमे एक व्यग्र पति और अन्य-परिवार वाले नर्सिंग होम के बरामदे में इधर-उधर घूमते रहते थे, और तेज़ी से दौड़ती हुई एक नर्स हाथ में ट्रे लिए कभी ऑपरेशन थियेटर में घुसती थी, कभी बाहर निकल कर एक ओर दौड़ जाती थी। फिर एक घडी को दिखाया जाता था, और मां···आं···मा···आं···मा···आं···रोने की आवाज सुनाई देती। इसी के साथ ऑपरेशन थियेटर का दरवाजा खुलता, और लेडी डॉक्टर बाहर निकल कर कहती, 'बधाई हो, बच्चा हुआ है।'

अब लेडी डॉक्टर बाहर निकल कर केवल इतना ही कहेगी, 'बधाई हो, मुसीबत टल गई······अर्थात···!'

जी हां, परिवार नियोजन का जमाना है। और···आप समझदार हैं ही।

हमारे शहर की प्रसिद्ध दाई जन्नत बाई ने अपने जीवन में जितने जापे किये हैं, उससे कहीं अधिक उसने गर्भपात कराए हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो जापे से अधिक एबोर्शन में कमाई है। दूसरे यह कार्य राष्ट्र हित का भी है।

लेकिन इस फैक्ट्री का प्रबन्धक वर्ग जन्नत बाई पासूदा के चरण चिन्हों पर चल कर आज सभी फैक्ट्रीयो के प्रबन्धको से ज्यादा सफल माना और जाना जाता है।

आपातकाल में जिन सरकारी, अर्द्ध सरकारी या निजी संस्थानों के कर्मचारियों के तीन बच्चे थे, उनकी अनिवार्य नसबन्दी करवायी गयी। यह किसी से छुपा नहीं, इसलिए दोहराने वाली बात भी नहीं। ऐसे में कालूराम बन्धानी के सामने एक दिक्कत आयी थी, उसके दो कन्याएं

पहले से थीं, तीसरी सन्तान होने को थी। स्टोर्स आफिसर ने मैनेजमेन्ट पॉलिसी को शिरोधार्य करके कालूराम को नसबन्दी ऑपरेशन करवाने के लिए प्रेरित किया। कालूराम दुविधा में। यदि ईश्वर की कृपा से बच्चा हो जाए, तो क्या कहने। पर न हुआ, लड़की हो जाए तो ! यही बात उसने स्टोर्स आफिसर के आगे रखी। लेकिन स्टोर्स आफिसर प्रबन्धक वर्ग का ताबेदार ठहरा। अपने सोचने के तरीके को कैसे बदल पाता।

निराश कालूराम जन्नत बाई पासूदा के पास गया, और···कालूराम की नसबन्दी की नौबत नही आई। जन्नत बाई की बात मानकर कालूराम ने अपनी पत्नी को गर्भपात के लिए मनाया। पर यह बात है आपातकाल की। उसके आठ साल बाद मैनेजमेन्ट स्वयं कालूराम वाली स्थिति मे आ गया।

'उन दिनों कारखाने मे एक रहस्यमय सन्नाटा छा गया था, जैसे कोई बहुत बड़ा अनैतिक कार्य हो गया हो। अब तक मजदूरों की यूनियन थी, इस यूनियन की जड़ो मे मैनेजमेन्ट ही पानी-खाद डालती थी। साफ-साफ शब्दों में यह उसी की यूनियन थी, जिसमें प्रबन्धक महोदय के चरण धोकर पीने वाले नेता पदाधिकारी थे। तब तक जन्नत बाई का कोई काम न था।'

लेकिन मजदूरो के एक वर्ग ने करवट ली। हरकत में आये और दूसरे झण्डे के नीचे अपनी यूनियन बना ली। छोटे अफसर चौके, बड़े अफसर घबराए, और भी बड़े अफसर जो थे, उनका रक्तचाप बढ़ने या घटने लगा। लेकिन योग की अवस्था को प्राप्त महाप्रबन्धक महोदय स्थिर रहे। जब अधिकारियों ने दूसरी यूनियन के जन्म और विकास की तीव्र गति के बारे मे (विषय मे) उन्हे जानकारी दी, तो उन्होंने अमृत वचन कहे :—

'एक और एक को ग्यारह यूं ही नही कहा जाता। एक ही यूनियन होती, तब उसमे तो यह शंका फिर भी थी कि कही नेताओं को हटाकर दूसरे नेता नेतृत्व अपने हाथ में लेकर हमे चुनौती न देने लगें। अब तो दूसरी यूनियन बन गई है। रजिस्टर्ड हो गयी, इसलिए हमने उसे

मान्यता भी दे दी, और स्वयं निश्चित हो गये। आप भी निश्चित रहें, अब यह दोनों यूनियन एक-दूसरे की खीचतान मे ही लगी रहेंगी।' और यही हुआ भी। पिछले दो साल से दोनों यूनियनों द्वारा मैनेजमेन्ट को दिए गए मांग पत्र रिकार्डरूम की किसी फाईल में बन्द पडे धूल चाट रहे हैं। दोनों यूनियन के नेता गेट पर अपने बहुमत को सिद्ध करने के लिए गला फाड-फाड कर सिंह गर्जना कर रहे हैं। लेबर कोर्ट मे मामला कछुए की चाल से आगे बढ़ रहा है। और प्रबन्धक महोदय द्राक्षासव का नियमित सेवन करके स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर रहे हैं। जन्नत बाई पासूदा का अभी भी कोई रोल नही।

इसके बाद कुछ ऐसा हुआ कि नितांत अबोध और अनुशासित समझे जाने वाली स्टॉफ जाति मे भी बगावत के संक्रामक कीटाणु प्रवेश करने लगे, और कुछ जागरूक कर्मचारियों ने यूनियन बनाने की आवश्यकता अपने दूसरे साथियो को समझाना आरम्भ कर दिया। स्टॉफ नामक जीव केंचुए जैसा निरीह प्राणी होता है। वह यूनियन बनाने को मैनेजमेन्ट के विरूद्ध विश्वासघात समझता है, या फिर नौकरी से निकाले जाने के भय से त्रस्त रहता है। ऐसे लोगों मे से दो-चार व्यक्ति यूनियन बनाने की कोशिश करते रहते थे, पर अधिक सफल नही हो सके थे। इस बार कुछ असंतोष या अभाव की ऐसी चिंगारी दबी पड़ी थी कि सघर्ष के शोले दहकने लगे। यह आच मैनेजमेन्ट तक पहुंची। मैनेजर का चेहरा फक हो गया, जैसे जवान लडकी घर से भाग जाए या औरत पराए मर्द के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखी जाए। कानून के कीडे लेबर आफिसर से लेकर पर्सनल डिपार्टमेन्ट के सुपरिन्टेन्डेन्ट तक चितामग्न हो गए।

मैनेजर को यूनियन बनने से भय था या नही, ईश्वर जाने, पर आश्चर्य बहुत था। जैसे किसी सुशील स्त्री के व्यभिचारिणी होने का पहली बार पता चला हो। स्टाफ के लोगों का यूनियन बनाने का मतलब था, मजदूरों की असंगठित लडाई से होने वाले लाभ का अन्त। मजदूरों में दो यूनियनें थी, मैनेजमेन्ट चाहे तो दो की दस बनवा दे या

एक कर दे, लेकिन स्टॉफ के लोगों को बहला-फुसला नही सकता। या वे यूनियन बनाने से दूर रहें, या यूनियन बन गई तो बन गई। यह एक गम्भीर मार करने वाली तोप की तैयारी थी जिसकी नली मैनेजर की कुर्सी की सीध में थी।

मैनेजर साहब के इर्द-गिर्द उनके परम भक्त आफिसर घूमते रहते और पल-पल की खबर पहुंचाते रहे। कानों-कान मे यह खबर भी पहुंची कि नेता लोग मैनेजमेन्ट द्वारा की गई स्टॉफ वर्ग की उपेक्षा और आफिसर्स को दी जाने वाली अनेकानेक सुविधाओं से क्षुब्ध हैं। इस असंतोष की जड़ें कितनी गहरी थी, कि यूनियन की सदस्यता का फॉर्म सबसे पहले 15 से 20 वर्ष की सर्विस वाले पुराने कर्मचारियों ने भरा। बाकी लोग भी भरने लगे, तब मैनेजमेन्ट ने व्यक्तिगत स्तर पर एक-एक नेता को अपने कान्फ्रेन्स हॉल में बुलाया, और···वहां जन्नत बाई के फार्मूले को काम में लिया गया।

इस अभियान को अभी सवा महीना ही हुआ था, इस से अधिक उपयुक्त अवसर अब कभी नही मिलने वाला था, इसलिए मैनेजर ने नेताजी से उनकी व्यक्तिगत शिकायतें और अभियोग सुनकर निकट भविष्य में उन्हें दूर करने का आश्वासन दिया।

छोटे नेताजी का बेटा बी० ए० पास किए बेकारी का शिकार था। उसको नौकरी में लगाने की आशा दिलायी। दो सक्रिय कार्यकर्ताओं मे से एक को स्कूटर खरीदने के लिए 8000 रुपये का दिलाना मंजूर हुआ, और दूसरे को वो घुडकी दी गई कि छठी का दूध याद आ गया। इस प्रकार साम-दाम-दण्ड-भेद के सदियो सिद्ध फार्मूले को आजमाया गया। इसके बाद उन उत्साही कार्यकर्ताओं को बहुत दिनो तक लोगों ने सडक पर नही देखा, जैसे कोई अविवाहित युवती गर्भवती हो जाए तो घर के बाहर नही निकलती। शेष कर्मचारी आपस में ढूंढते-पूछते रहे कि शर्मा जी कहां गए, खत्री जी कहां गए, गुप्ता जी कहां गए, पर कोई नही बता सका, उनके बाल-बच्चे या ऊपर वाले कोई नही, कोई भी नही बता सका। किसी ने खबर दी, इन सभी नेताओं को सेठ जी ने दिल्ली बुलाया है। किसी ने कहा, स्टोर्स आफिसर्स के साथ उदयपुर का

'दारा' करन गए हैं । गर्ज यह कि कुछ दिनों बाद दफ्तर में वे चारों नेता अवतरित हुए और अपने काम में जुट गए ।

जन्नत बाई पासूदा के घर से लौटते समय कालूराम को जितनी प्रसन्नता हुई थी, उससे अधिक प्रवन्धक महोदय को हुई थी, जिन्होंने संघर्ष की मुहिम का एक और गर्भपात करवा दिया था, और सेठ जी के परम विशिष्ट भक्तों में अपना नाम लिखाने की सफलता प्राप्त कर ली थी। पुरुषों के लिए किसी पद पर विवाहित होने की शर्त नही होती । लेकिन···प्रबन्धक का पद जरूर ऐसा है, जिसमें उसका यूनियन उत्पत्ति मे असमर्थ होना वांछनीय है । यदि उसके पद पर रहते किसी भी दिन यूनियन का जन्म हो जाए तो प्रबन्धक की शामत आ जाती है । इसके लिए जिस प्रकार एक कामी परन्तु बूढ़ा पति अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह करता है, और एक दो गुप्तचर व्यक्ति पीछे लगा देता है उसी प्रकार सुरक्षा विभाग का सारा जमावडा इसी बात का पता लगाने के लिए होता है कि कही यूनियन फोर्स मे तो नही आ रही है । उसके लिए हमारे मैनेजर ने बडे नायब नुस्खे तैयार किये हैं । श्री राम जयन्ती, श्री कृष्ण जयन्ती, महावीर जयन्ती, नव वर्ष समारोह, होली-मिलन, दीपोत्सव और उत्पादन दिवस आदि के नाम पर साल में 5-6 ऐसे कार्यक्रम होते हैं, जिसमें रंगारंग कार्यक्रमों की आड़ में श्रम संगठनों का विकृत रूप प्रस्तुत करके उन्हें उत्पादन को नुकसान पहुंचाने वाले श्रमिक विरोधी स्वार्थी तत्व सिद्ध किया जाने वाले गीत, कविता, नाटक और प्रहसन आदि का कार्यक्रम होता है ।

हर विभाग को एक बार वन-विहार के लिए ले जाया जाता है । जहां प्रवन्धक वर्ग और श्रमिकों के सम्बन्धों मे घनिष्ठता मे श्रम संगठन की निरर्थकता की बात आम मजदूरों के दिमाग में भर दी जाती है । यह सब इसलिए कि इससे प्रबन्धक वर्ग को पता चलता रहता है कि··· कोई यूनियन वाली बात अभी पैदा नही हुई । ऐसे में कभी यूनियन बनने का माहौल पैदा होता है तो, लाला को प्रवन्धको के पौरूष पर उंगलियां उठाने की नौबत आ जाती है और तब हमारे प्रवन्धक भाग-दौड़ कर जन्नत बाई के फार्मूले को काम मे लेकर वही सब करते हैं, जो कभी कालूराम को करवाना पड़ा था । ☐

परिचय

नाम : सुरेश कुमार शर्मा
जन्म स्थान : झालावाड़ (राजस्थान)
शिक्षा : स्नातकोत्तर (वाणिज्य)
व्यवसाय : कोटा के एक कारखाने में नौकरी
पूर्व व्यवसाय : भारतीय जल सेना में नाविक
अन्य कृतियां : 'पहल' (उपन्यास)
विश्व विजय पाकेट बुक द्वारा प्रकाश्य
'परिप्रेक्ष्य' (कथा संग्रह)